माता पिता के प्रश्न

गिजुभाई

माता-पिता के प्रश्न

लेखक

गिजुभाई

अनुवाद

रामनरेश सोनी

मॉण्टेसरी बाल शिक्षण समिति

राजलदेसर (चूरू) ३३१८०२

प्रकाशक
मॉण्टेसरी बाल शिक्षण समिति
राजलदेसर

प्रकाशन वर्ष : 1987
मूल्य : 6 रुपये मात्र

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स
सुगन निवास, बीकानेर
फोन : 6455

प्रकाशकीय

हमारे साथियों ने जब यहां पर सन् 1954 में अभिनव बाल भारती नामक संस्था स्थापित की थी, तभी मेरे जेहन में बाल-शिक्षण के साथ ही साथ अध्यापकों को प्रशिक्षण देने का विचार भी उठ रहा था बल्कि अभिभावकों द्वारा प्रशिक्षण लेने का विचार भी मेरे मन में बहुत प्रबल था। मैं सौभाग्यशाली रहा कि एक बार कलकत्ते में मुझे प्रख्यात बाल शिक्षाविद् स्व. के. यू. भामरा से प्रशिक्षण लेने का अवसर मिला, सन् 1958-59 में।

उस प्रशिक्षण ने मेरे चिंतन की दिशा को और भी पुष्ट कर दिया कि बाल-शिक्षण के लिए अध्यापकों का ही नहीं, माता-पिताओं का भी नजरिया बदलना जरूरी है। मेरे आग्रह पर स्व. के. यू. भामरा यहां पधारे और सन् 1962 में उन्होंने मोंटेसरी प्रशिक्षण का काम शुरू किया। आज 25 वर्षों से अध्यापकों के शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्यक्रम यहां जारी है और अब तक लगभग 200 अध्यापक प्रशिक्षण का लाभ हासिल कर चुके हैं।

मैं अब भी बराबर अनुभव करता रहा हूं कि अध्यापक बनने के लिए मोंटेसरी-शिक्षण का प्रशिक्षण लेना एक बात है, और बच्चों के माता-पिता बनने के लिए प्रशिक्षण लेना एक अलग अहमियत रखता है। मेरी पत्नी और दोनों पुत्रियों ने महज इसी इरादे से प्रशिक्षण लिया था। मैं चाहता हूं कि अभिभावकों को इस दिशा में प्रेरित किया जाना जरूरी है। इसी इरादे से पिछले दिनों हमने संस्था में 'अभिभावकत्व शिक्षण' पर एक संगोष्ठी भी आयोजित की थी। संगोष्ठी में बाल-शिक्षण के अछूते पक्षों पर तो रोशनी डाली ही गई, संस्था के लिए एक सुझाव भी सामने आया कि माता-पिता की शिक्षा के लिए शैक्षिक-साहित्य प्रकाशित कराया जाए। हमने इसे स्वीकार किया और पहला कदम यह उठाना जरूरी समझा कि देश के महान बाल शिक्षाविद स्व. गिजुभाई बधेका की गुजराती भाषा में लिखी हुई

पुस्तकों को हिन्दी में अनुवाद करवाकर पुस्तकाकार प्रकाशित करें। इस दिशा में इंदौर के महान गांधीवादी चिंतक एवं मध्यभारत के प्रथम शिक्षामंत्री श्री काशिनाथ त्रिवेदी का हमें अभूतपूर्व सहयोग एवं प्रोत्साहन मिला। स्व. गिजुभाई की अनेक पुस्तकों का वे सन् 1930-32 के कार्यकाल में ही अनुवाद कर चुके हैं और शेष का भी अनुवाद करने का उनका संकल्प है। इसी दिशा में मुझे 'शिविरा पत्रिका' के संपादकीय सहकर्मी श्री रामनरेश सोनी का भी सहयोग मिला है।

पुस्तक प्रकाशन का काम अपने आप में बहुत कठिन होता है, विशेषतया अर्थ के अभाव में तो असम्भव प्रायः हो जाता है। पर हमारा सौभाग्य है कि मेरे अनुरोध को यशस्वी दानदाताओं ने स्वीकार किया और प्रत्येक पुस्तक को अकेले अपने ही आर्थिक-सहयोग से छपाने का भार वहन किया है। प्रस्तुत पुस्तक 'माता-पिता के प्रश्न' के प्रकाशन का व्यय-भार तो मेरे पूज्य पिताजी **श्री चम्पालाल जी बेद** ही वहन करने का मुझे काफी पहले कह चुके हैं। यह पुस्तक वे मेरी स्व. मां की याद में प्रकाशित करना चाहते हैं। इसके लिए पिताजी का आभार मानने की औपचारिकता मैं व्यक्त नहीं कर सकता, शायद ही कोई कर पाएगा कभी! स्व. गिजुभाई के विचारों से अगर आज के माता-पिता और अध्यापक लाभ उठा सके तो मैं पिताजी के इस योगदान को सार्थक मानूंगा।

इस पुस्तक की 'भूमिका' के लिए जाने-माने शिक्षाविद श्री शिवरतन थानवी का और 'संपादकीय का निवेदन' के लिए श्रद्धेय काशिनाथ त्रिवेदी का मैं हार्दिक आभार मानूंगा। श्रीयुत् काशिनाथजी ने तो गिजुभाई की समस्त गुजराती पुस्तकों को ग्रन्थमाला के रूप में प्रकाशित करने हेतु दक्षिणा-मूर्ति बाल मंदिर भावनगर की आचार्या श्रद्धेया विमुबेन बधेका से भी हमारे लिए पत्राचार किया है, इसके लिए भी हम आभारी हैं।

मोंटेसरी बाल शिक्षण समिति
राजलदेसर

—कुन्दन बेद

संपादक का निवेदन

हिन्दी में गिजुभाई-ग्रंथमाला का अवतरण

अपने जन्म से पहले अपनी मां के गर्भ में, और जन्म के बाद अपने माता-पिता और परिवार के बीच, हमारे निर्दोष और निरीह बच्चों को हमारी ही अपनी नादानी, नासमझी और कमजोरियों के कारण शरीर और मन से जुड़े जो अनगिनत दुःख निरन्तर भोगने पड़ते हैं, जो उपेक्षा, जो अपमान, जो तिरस्कार, जो मार-पीट और डांट-फटकार उनको बराबर सहनी पड़ती है, यदि कोई माई का लाल इस सब पर एक लम्बी दर्द-भरी कहानी लिखे, तो निश्चय ही वह कहानी हममें से जो भी संवेदनशील है, और सहृदय हैं, उनको रुलाए बिना रहेगी ही नहीं। अपने ही बालकों को हमने ही तन-मन के जितने दुःख दिए हैं, चलते-फिरते और उठते-बैठते हमने उनको जितना मारा-पीटा रुलाया, सताया और दुरदुराया है, उसकी तो कोई सीमा रही ही नहीं है। इन सब की तुलना में हमारे घरों में बालकों के प्यार-दुलार का पलड़ा प्राय: हलका ही रहता रहा है।

ऐसे अनगिनत दुखी-दरदी बालकों के बीच उनके मसीहा बनकर काम करने वाले स्वर्गीय गिजुभाई बधेका की अमृत वर्षा करने वाली लेखनी से लिखी गई, और माता-पिताओं और शिक्षक-शिक्षिकाओं के लिए वरदान रूप बनी हुई छोटी-बड़ी गुजराती पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद इस गिजुभाई-ग्रंथमाला के नाम से प्रकाशित करने का सुयोग और सौभाग्य बाल शिक्षा के काम में लगी हमारी एक छोटी-सी शिक्षा-संस्था को मिला है, इसकी बहुत ही गहरी प्रसन्नता और धन्यता हमारे मन: प्राण में रम रही है। हमको लगता है कि इससे अधिक पवित्र और पावन काम हमारे हिस्से न पहले कभी आया, और न आगे कभी आ पायगा। हम अपनी इस कृतार्थता को किन शब्दों में और कैसे व्यक्त करें, इसको हम समझ नहीं पा रहे हैं। हम नम्रता-पूर्वक मानते हैं कि परम मंगलमय प्रभु की परम सुख देने वाली आन्तरिक प्रेरणा का ही यह

एक मधुर और सुखद फल है। इसको लोकात्मा रूपी और घट-घट व्यापी प्रभु के चरणों में सादर सविनय समर्पित करके हम धन्य हो लेना चाहते हैं।

त्वदीय वस्तु गोविन्दं तुभ्यमेव समर्पयेत् ।

क्राउन सोलह पेजी आकार के कोई ढाई से तीन हजार की पृष्ठ-संख्यावाली इस गिजुभाई ग्रंथमाला में गिजुभाई की जिन 15 पुस्तकों के हिंदी अनुवाद प्रकाशित करने की योजना बनी है, उनमें तीन पुस्तकें माता-पिताओं के लिए हैं। तीनों अपने ढंग की अनोखी और मार्गदर्शक पुस्तकें हैं। घरों में बालकों के जीवन को स्वस्थ, सुखी और समृद्ध बनाने की प्रेरक और मार्मिक चर्चा इन पुस्तकों की अपनी विशेषता है। ये हैं :

1. मां-बापों से
2. मां-बाप बनना कठिन है, और
3. माता-पिता के प्रश्न।

बाकी बारह पुस्तकों में बाल-जीवन और बाल-शिक्षण के विविध अंगों की विशद चर्चा की गई है। इनके नाम यों है :

1. मोण्टीसोरी-पद्धति
2. बाल-शिक्षण, जैसा मैं समझ पाया
3. प्राथमिक शाला में शिक्षा-पद्धतियां
4. प्राथमिक शाला में शिक्षक
5. प्राथमिक शाला में भाषा-शिक्षा
6. प्राथमिक शाला में चिट्ठी-बाचन
7. प्राथमिक शाला में कला-कारीगरी की शिक्षा, भाग 1-2
8. दिवास्वप्न
9. यदि आप शिक्षक हैं
10. चलते-फिरते
11. यह कैसी सिरपच्ची ?
12. कथा-कहानी का शास्त्र, भाग 1-2

इनमें 'मोण्टीसोरी पद्धति', 'दिवास्वप्न' और 'कथा-कहानी का शास्त्र' ये तीन पुस्तकें अपनी विलक्षणता और मौलिकता के कारण शिक्षा जगत् के लिए गिजुभाई की अपनी अनमोल और अमर देन बनी हैं। इनमें बाल-देवता के पुजारी और बाल-शिक्षक गिजुभाई ने बहुत ही गहराई में जाकर अपनी आत्मा को उंडेला है। बाल-जीवन और बाल-शिक्षण के मर्म को समझने में ये अपने पाठकों की बहुत मदद करती हैं। बार-बार पढ़ने, पीने,पचाने और अपनाने लायक भरपूर सामग्री इनमें भरी पड़ी है। ये अपने पाठकों को बाल-जीवन की गहराइयों में ले जाती हैं, और बाल-जीवन के मर्म को समझने में पग-पग पर उनकी सहायता करती रहती हैं।

गिजुभाई की इन पन्द्रह रचनाओं में से केवल दो रचनाएं, 'दिवास्वप्न' और 'प्राथमिक शाला में भाषा-शिक्षा' सन् 1934 में पहली बार हिन्दी में प्रकाशित हुई थीं। शेष सब रचनाएँ अब सन् 1987 में क्रम-क्रम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने वाली हैं। पचास से भी अधिक वर्षों तक हिन्दी-भाषी जनता का हमारा शिक्षा-जगत् इन पुस्तकों के प्रकाश से वंचित बना रहा। न गिजुभाई का जन्म शताब्दी वर्ष आता, और न यह पावन अनुष्ठान हमारे संयुक्त पुरुषार्थ का एक निमित्त बनता। 15 नवम्बर 1984 को शुरू हुआ गिजुभाई का जन्म शताब्दी वर्ष 15 नव. 1985 को पूरा हो गया। किन्तु गुजरात की बाल-शिक्षा-संस्थाओं ने और बाल-शिक्षा-प्रेमी भाई बहनों ने गुजरात की सरकार के साथ जुड़कर जन्म शताब्दी वर्ष की अवधि 15 नवम्बर, 86 तक बढ़ाई, और गिजुभाई के जीवन और कार्य को उसके विविध रूपों में जानने और समझने की एक नई लहर गुजरात भर में उठ खड़ी हुई। गुजरात के पड़ौसी के नाते उस लहर ने राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश के हम कुछ साथियों को भी प्रेरित और प्रभावित किया। फलस्वरूप गिजुभाई ग्रंथमाला को हिन्दी में प्रकाशित करने का शुभ संकल्प राजस्थान के राजलदेसर नगर के बाल-शिक्षा प्रेमी नागरिक भाई श्री कुन्दन बैद के मन में जागा, और उन्होंने इस ग्रंथमाला को हिन्दी-भाषी जगत् के हाथों में सौंपने का बीड़ा उठा लिया।

हमको विश्वास है कि भारत का हिन्दी-भाषी जगत्, विशेषकर उसका हिन्दी-भाषी शिक्षा-जगत्, अपने बीच इस गिजुभाई ग्रंथमाला का भरपूर स्वागत मुक्त और प्रसन्न मन से करेगा, और इससे प्रेरणा लेकर अपने क्षेत्र के बाल-जीवन और बाल-शिक्षण को सब प्रकार से समृद्ध बनाने के पुण्य-पावन कार्य में अपने तन मन धन की तल्लीनता के साथ जुट जाना पसन्द करेगा।

हिन्दी में गिजुभाई ग्रन्थमाला के अवतरण की इससे अधिक सार्थकता और क्या हो सकती है ?

अपने जीवन-काल में गिजुभाई ने अपनी इन रचनाओं को अपनी कमाई का साधन बनाने की बात सोची ही नहीं । अपने चिन्तन और लेखन का यह नैवेद्य भक्ति भावपूर्वक जनता जनार्दन को समर्पित करके उन्होंने जिस धन्यता का वरण किया, वह उनकी जीवन-साधना के अनुरूप ही रहा। गिजुभाई के इन पदचिह्नों का अनुसरण करके हमने भी अपनी गिजुभाई-ग्रंथमाला को व्यावसायिकता के स्पर्श से मुक्त रखा है और ग्रंथमाला की सब पुस्तकों को उनके लागत मूल्य में ही पाठकों तक पहुंचाने का शुभ निश्चय किया है।

बीकानेर, राजस्थान, के हमारे बाल-शिक्षा-प्रेमी साथी, जाने-माने शिक्षा-विद् और गिजुभाई के परम प्रशंसक श्री रामनरेश सोनी इस ग्रन्थमाला के अनुष्ठान को सफल बनाने में हमारे साथ सक्रिय रूप से जुड़ गए हैं, इससे हमारा भार बहुत हलका हो गया है।

हमको खुशी है कि हमारे साथी श्री कुन्दन बैद इस ग्रन्थमाला की 15 पुस्तकों के लिए पन्द्रह ऐसे उदार और सहृदय दाताओं की खोज में लगे हैं, जो इनमें से एक एक-पुस्तक के प्रकाशन का सारा खर्च स्वयं उठा लेने को तैयार हों। इसमें भी पहल श्री कुन्दन बैद ने ही की है। त्याग और तप की बेल तो ऐसे ही खाद-पानी से फूलती-फलती रही है!

—काशिनाथ त्रिवेदी

गांव-पीपल्याराव
इन्दौर-452 001

भूमिका

जो काम गांधीजी ने राजनीति में किया वही काम गिजुभाई ने शिक्षा के क्षेत्र में किया। सरलता और सादगी को सर्वोपरि रखा। देश की जमीन से जुड़े रहे। विशाल विश्वदृष्टि के कारण मानवीयता से ओत-प्रोत रहे। जो किया तल्लीनता से किया, सीखने की दृष्टि से किया, प्रयोग की भावना से किया और सबको साथ लेकर चलने की पक्की निष्ठा से किया।

लोग गांधीजी को भूल गए। लोग गिजुभाई को भी भूलते जा रहे हैं। देश का हित इसी में है कि हम गांधीजी और गिजुभाई को हर दम अपने सामने रखें, उनकी ही तरह जीवन को अध्ययन का विषय बनाएं, प्रयोग करें, सीखें, और सिखाएं।

दोनों के लिए जीवन का लक्ष्य सत्य का अनुसंधान था और समूचा जीवन ही उनके लिए प्रयोगशाला था। उन्होंने कभी नहीं माना कि जो उन्होंने जाना वही सत्य है। जीवन भर वे सत्य की खोज में लगे रहे, प्रयत्न और प्रयोग करते रहे, अपने अनुभवों को दुनिया को बताते रहे और उन अनुभवों पर ध्यानपूर्वक विचार करते हुए आगे का रास्ता तय करते रहे।

यह जो पुस्तक आपके हाथों में आज आ रही है इस पुस्तक में गिजुभाई के अनुभवों, प्रयोगों और विचारों का निचोड़ है। इस पुस्तक को पढ़ने से हर मां-बाप को ज्ञात होगा कि उनके और उनके बच्चों के बीच ध्यानपूर्वक विचार करने को अभी भी कितना कुछ बाकी है। पूर्व-प्राथमिक और प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों को भी बच्चों के मनोविज्ञान को समझने में इस पुस्तक से मदद मिलेगी। प्रत्येक घर में और प्रत्येक विद्यालय में यह पुस्तक रहनी चाहिए। यह पुस्तक ही नहीं गिजुभाई का पूरा साहित्य घर-विद्यालय की शोभा है।

गिजुभाई के साहित्य से मेरी पहचान बहुत पुरानी है। मैं जब बच्चा था तभी से मैंने गिजुभाई को पढ़ना आरम्भ कर दिया था। मैं जो शिक्षक बना उसके पीछे भी गिजुभाई की प्रेरणा ही काम कर रही थी। मैंने शैक्षिक पत्रकारिता और लेखन में जो रुचि ली उसके पीछे भी गिजुभाई के साहित्य की ही प्रेरणा थी। मेरे पिताजी भी शिक्षक थे। वे गिजुभाई द्वारा संपादित पत्रिका 'शिक्षण पत्रिका' मंगाया करते थे। गिजुभाई इस पत्रिका का न केवल संपादन करते थे बल्कि स्वयं इसमें नियमित रूप से लिखा भी करते थे। कुछ रचनाएं बच्चों के लिए होतीं और कुछ रचनाएं माता-पिताओं के लिए भी होतीं। शिक्षकों के लिए तो पूरी पत्रिका ही प्रकाशित हो रही थीं। बच्चों के लिए गिजुभाई जो लिखते थे वह मेरे पिताजी अपनी स्कूल के बच्चों को सुनाया करते थे, गली-मोहल्ले के बच्चों को और घर में हम भाई-बहनों को भी सुनाया करते थे। मैं भी सुनता था। पढ़ता था। माताओं-पिताओं के लिए जो लेख होते थे वे शिक्षकों के लिए भी सामान रूप से उपयोगी थे। मैं दूसरी-तीसरी कक्षा में था तो भी गिजुभाई का यह तीनों प्रकार का लेखन खूब रुचिपूर्वक पढ़ा करता था।

गिजुभाई के चिंतन व लेखन का ही यह जादू था जो मुझे व पिताजी को इतना आकर्षित करता था। पिताजी के साथ कई शिक्षक व अभिभावक गिजुभाई के लेखन का आनन्द व लाभ लेते थे। मेरे साथ भी कई विद्यार्थी थे जो गिजुभाई के लेखन का आनन्द व लाभ लेते थे।

आज मैं गिजुभाई की रचनाओं को हिंदी में राजस्थान से प्रकाशित होते हुए देख रहा हूं तो मुझे बहुत खुशी हो रही है। इन रचनाओं को हिंदी पाठकों तक पहुंचाने का बीड़ा उठाने वाले श्री कुन्दन बंद, रामनरेश जी सोनी और काशिनाथजी त्रिवेदी भावी पीढ़ी का और अभिभावकों व शिक्षकों का बहुत बड़ा उपकार कर रहे हैं। राजस्थान के एक कोने में रेगिस्तान में बसे एक छोटे से गांव में यदि मेरे पिताजी को 'शिक्षण पत्रिका' के माध्यम से गिजुभाई के साहित्य का परिचय प्राप्त न हुआ होता तो पता नहीं हमें कभी ज्ञात भी होता कि नहीं कि बच्चे के प्रति कोई दूसरी दृष्टि भी हो सकती है। दूसरी हो सकती है तो तीसरी भी हो सकती है। तीसरी हो सकती है तो तीसरी के आगे की तलाश की संभावना भी हो सकती है। अनेक सम्भावनाएं खुल सकती हैं, अनेक दिशाएं मिल सकती हैं। जरूरत गिजुभाई जैसे शिक्षकों की है, अभिभावकों की है। गिजुभाई का शिक्षा-साहित्य व बाल-साहित्य हमें इसमें असीम प्रेरणा दे सकता है।

कुछ लोगों के मन में एक शंका यह खड़ी हो सकती है कि क्या गिजुभाई आज भी प्रासंगिक हैं? क्या भविष्य में भी वह प्रासंगिक रहेंगे?

निस्संदेह गिजुभाई आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितना वे पचास वर्ष पहले थे और यदि हम अपने बच्चों के प्रति स्नेह रखते हैं तो भविष्य में भी गिजुभाई की प्रासंगिकता में कोई कमी नहीं आएगी।

माताओं-पिताओं द्वारा उठाए गए सवालों के गिजुभाई ने जो उत्तर दिए हैं वे आज भी उतने ही उपयोगी हैं जितने वे गिजुभाई के जमाने में थे। मुझे विश्वास है इन प्रश्नों को व इन प्रश्नों के गिजुभाई ने जो उत्तर दिए हैं उनको पढ़ कर प्रत्येक माता-पिता (और शिक्षक भी) अपने बच्चों को फिर से समझने की कोशिश करेंगे। गिजुभाई का सोचने का तरीका हमें फिर से सोचने के लिए बाध्य करता है। गिजुभाई का सोचने का तरीका हमें नई दृष्टि देता है। जो भी व्यक्ति गिजुभाई का साहित्य पढ़ेगा वह नई दृष्टि के लिए जरूर तैयार रहेगा, प्रयोग करेगा, दिल-दिमाग खुला रखेगा और सरलता व सादगी को व मनुष्यता को प्राथमिकता देते हुए बच्चों के वास्तविक विकास अर्थात् वास्तविक शिक्षा के स्वरूप को समझने का प्रयत्न भी करता रहेगा।

—शिवरतन थानवी

संयुक्त निदेशक
शिक्षा निदेशालय राजस्थान,
बीकानेर

दो शब्द

अलग-अलग अवसरों पर बच्चों के माता-पिताओं ने मुझसे जो-जो प्रश्न पूछे थे, और जिनके उत्तर मैंने उन्हें मौखिक रूप में या लिखकर भेजे थे, उनका यह संग्रह, मेरा विश्वास है कि अपने बच्चों की सुशिक्षा की चिंता करने वाले माता-पिताओं के निमित्त उपयोगी रहेगा ।

गिजुभाई

माता पिता के प्रश्न

प्रश्न : १

अधिकांशत: आजकल स्त्री-पुरुष एक सरीखे पढ़े-लिखे नहीं हैं । जहां माता अज्ञानी हो और पिता शिक्षित, समझदार, उच्चादर्शी, वहां अगर उन दोनों के बीच वैचारिक-विरोध पैदा हो जाए तो क्या किया जाना चाहिए ? कई बार पुरुष को ऐसे वचन सुनने पड़ते हैं; 'देख ली आपकी मोंटेसरी; दूर रखिए अपने विचार; मुझे नहीं मानना इन्हें । धप्प से एक थप्पड़ जमाया, और सप्प-से सीधा हो जाए ।' क्या आपने ऐसी-ऐसी मुसीबतों पर सोचा है कभी ? ऐसे में क्या करेंगे आप ?

उत्तर

प्रश्न स्वाभाविक और वास्तविक है । ऐसी मुसीबत हर बेचारी माता या पिता के सामने आ जाती है । 'संभालो अपनी मोंटेसरी !' ऐसा कहते हुए बच्चों को थप्पड़ मारने के दृष्टांत हमारे सामने हैं । ऐसे अनुभव तो होते ही रहते हैं । पर ऐसी दशा में जल्दबाजी नहीं की जानी चाहिए । इस मुद्दे को लेकर कहीं माता-पिता लड़ न पड़ें । एक-दूसरे की गलती के लिए कहीं वे आमने-सामने न तन जाएं । उनमें भीतर ही भीतर परस्पर

विरोध न बढ़ जाए । बालक तो उन दोनों के हैं । उनका हित-चिंतन उन्हीं के जिम्मे है । होना यह चाहिए कि इस प्रश्न पर शिक्षण-विषयक अज्ञान को दूर किया जाए । अगर बालक को लेकर माता-पिता अपने मनों में परस्पर दुश्मन बन जाएंगे, तो जाहिर है घर घर नहीं रहेगा, युद्ध क्षेत्र बन जाएगा; उल्टे वहां बालक की पढ़ाई बिगड़ेगी ही । ऐसे में माता-पिता दोनों में से जो विचारवान हो वह दूसरे साथी को धीरज-से समझाने का प्रयत्न करे, शांति से अपने योग्य व्यवहार की छाप उस पर अंकित करे । कोई किसी के अज्ञान को अभिमान से दूर करने की कोशिश न करे । अज्ञानी का गुरु अधिक विनयशील और सरल होना चाहिए । अज्ञान बुद्धि-बल से आंदोलित होता है, डरता है, पर प्रेम से अपना रास्ता नापता है । बुद्धि-बल से सत्य स्पष्ट होता है, पर प्रेम-बल से उस सत्य को स्वीकार कराया जा सकता है । अतः दोनों में से बालक का हित करने में जो भी ज्यादा समझदार हो, उसे चाहिए कि शांति व प्रेम से दूसरे साथी को समझाए । ऐसा करने के बावजूद अज्ञानी एकदम समझ ही जाएगा यह भी संभव नहीं । इसके वास्ते अपने भीतर-बाहर बहुत-बहुत सहना पड़ता है वस्तुतः सभी-कुछ हंसते-हंसते सहना चाहिए और सामने वाले के प्रति दिल में आदर-भाव होना चाहिए, तभी आखिर में सत्य विजयी होगा । सामने वाले के प्रति हम जितना क्रोध करेंगे, नफरत रखेंगे, समझ लो, उतना ही हम सत्य के प्रति कम-योग्य हैं । अतः स्त्री अथवा पुरुष को परस्पर विरोधी बनकर नहीं अपितु मेलजोल रखकर, यह मानकर कि उनका पारस्परिक हेतु शुभ है—उसे लेकर मत-विरोध से नहीं, एक दूसरे को मधुरतापूर्वक सुधारना चाहिए ।

अगर सामने वाले को हम हल्का समझेंगे, तो वह और भी

हल्का हो जाएगा । व्यक्ति में श्रेष्ठता का अभिमान ही इस बात का साक्षी है कि व्यक्ति श्रेष्ठ नहीं है । अतएव जिस व्यक्ति में अधिक ज्ञान हो, वह उसी से आत्मघात न करे । सुधारने वाला मैं हूं यह मानकर या कह कर कोई किसी को सुधार नहीं सकता । उच्च शिक्षण-सिद्धांतों का अनुसरण करके ही, जिस प्रकार बालकों के साथ व्यवहार किया जाता है, वैसे ही जरूरत पड़ने पर अपने जीवन-साथी के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए ।

जब कभी मन अत्यधिक परिताप से भर उठे, उस समय (और ऐसा परिताप स्वाभाविक भी है) सामने वाले को डांटने-डपटने के बजाय हमें अपने मन में दुख का अनुभव कर लेना अधिक समझदारी है । क्रोध के आवेश में सिर्फ स्वयं को ही सजा देनी चाहिए, सामने वाले को क्रोध दिखाकर वश में करने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए । क्योंकि इससे उसे अधिक दुख होगा, कदाच वह अत्यधिक निष्ठुर बन जाए । दिल में सहना और ऊपर से हंसना, साथ ही साथ यथासमय दृढता से, व्यवहार से और परामर्श से यह बताते रहना कि सत्य क्या है, यही अभीष्ट है ।

'बालकों पर जुल्म होते हैं', 'क्यों मानी इनकी बात ?', 'बस, यह परिस्थिति बहुत घटिया है'—ऐसे खयाल जब भी मन में उठने लगें, तब धैर्य ही रखना चाहिए । सचमुच ही अगर माता-पिता की परिस्थिति अनीतिमय हो तो बालकों के हित में वे एक-दूसरे का त्याग अवश्य कर सकते हैं, लेकिन अज्ञानता के दोषों की वजह से कोई किसी को न त्यागे । अज्ञानता या मूर्खता को निभा लेना चाहिए । शिक्षण को लेकर माता या पिता का अयोग्य व्यवहार घर के लिए एक अनिवार्य आपत्ति हो है, पर उसे लेकर घर नहीं टूटना चाहिए । भले ही माता-

पिता दिल में दुखी हों, पर वे इसका समाधान तलाश करें। लेकिन जब समाधान ढूंढ पाना सर्वथा मुश्किल हो जाए, एक को सांधते तेरह टूटें, समाधान निकाल पाना कैसे ही करके संभव न हो, तब कोई अच्छा प्रबंध करके बालक को अच्छे विद्यालय में, और इससे भी आगे बढ़कर उसे अच्छे छात्रावास में भर्ती करा देना चाहिए। बच्चे तो होते ही हैं, यह प्रकृति का नियम है, अत: इस तथ्य को स्वीकार करके उनकी शिक्षा का प्रबंध करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

इतना सब करने के बाद भी सभी कुछ अनुकूल नहीं होना-जाना। हर चीज का विकास समय मांगता है। आज हम जो कुछ सोच या कर सकते हैं, वह दूसरे लोग अभी से क्यों न करें—ऐसी बात पूछना हमारी विकास विषयक सच्ची कल्पना की त्रुटि प्रकट करता है। हमारे अन्य दोषों के लिए जिस प्रकार हमीं को धीमे-धीमे प्रयत्न करके आगे बढ़ना होता है, वैसे ही सामान्य स्त्री-पुरुषों को भी यही बात दिमाग में रख कर परस्पर निभाव कर लेना चाहिए, और ऐसी समझदारी का अवसर लाना चाहिए। बच्चों को सुन्दर बनाने के लिए हरेक माता-पिता अपने आपको बदल डाले, यह एक खाम-खयाली होगी। ऐसी बात सोचने वाले लोग बालकों के हित-चिंतक नहीं होते। जो लोग बालकों के हित-चिंतक हैं, शिक्षाशास्त्री हैं, उन्हें चाहिए कि स्त्री-पुरुषों की शिक्षा का मार्ग भी वे तलाश करें, क्योंकि समस्याओं का समाधान वहीं संभव है। उन्हें पता है कि आबाल-वृद्ध जनों को शिक्षा के सनातन सिद्धांत क्या हैं।

इसके अलावा एक और आखिरी आधार है—ईश्वर की शरण जाने का। हमें यह सभी कुछ ऐसे ही प्राप्त हुआ है। ये स्त्री-पुरुष, यह समाज, यह शिक्षा व्यवस्था और यह दाय, ये हमारी शालाएं और इन तमाम के बीच हम स्वयं, यह भी एक परेशानी की बात है। और परेशानी है, कोशिश करने पर भी रहेगी और हमारी नि:सहायता के बावजूद रहेगी। अगर हम ईश्वर में या ऐसी ही किसी शक्ति में आस्था रखते हैं, तो उनके शरण में जाकर कहना चाहिए—'जो कुछ उसकी मर्जी है वही होगा, अपनी शक्ति और बुद्धि के अनुरूप मैं तो कर्मशील ही हूँ और आगे भी कर्मनिरत रहूंगा।' ऐसा चिंतन करने से प्रयत्न-शील व प्राणवान व्यक्ति को शांति मिलेगी। आलसी और मूर्ख व्यक्ति के लिए तो यह सब प्रगति के मार्ग से हटाने वाली और नास्तिक बातें ही होंगी।

अंत में मेरा अनुरोध यह है कि ऐसी परिस्थिति से गुजरते-गुजरते मैंने जो अनुभव प्राप्त किए हैं, उन्हीं के आधार पर मैंने यह लिखा है। मैं स्वयं अलग-अलग तरीके अपनाकर देख-समझ रहा हूं।

प्रश्न : २

बच्चों की पढ़ाई को लेकर घर में मेरे विचारों के मुताबिक काम नहीं होता। ऐसे में क्या करना चाहिए ?

उत्तर

हमारे मुताबिक ही होना चाहिए, ऐसी धारणा रखने से ही लोग हमारे विरोधी बनते हैं। वस्तुत: एक ऐसी समझ पैदा की जानी चाहिए कि सही बात को सब लोग विवेकपूर्ण दृष्टि से स्वीकार करें।

प्रश्न : ३

एक बालक को विद्यालय जाना नहीं रुचता। विद्यालय जाने को कहते ही वह दुछत्ती पर दो-तीन घंटे जा छिपता है, और विद्यालय की बात उससे न कहें तो वह खुश रहता है, बाल-साहित्य की रुचिकर पुस्तकें उलट-पलट कर स्वयं पढ़ने

लगता है। क्या उसे जबरदस्ती विद्यालय भेजा जाए ?

उत्तर

हर्गिज नहीं ! घर में पढ़ता है ना वह !

प्रश्न : ४

पहले गृहकार्य फिर, खाना—क्या ऐसा नियम बालक के लिए कठोर होगा ? गृहकार्य, न करने वाले बालक के लिए अगर यह नियम लाभदायो लगे तो क्या इसका पालन करायें, या नहीं ?

उत्तर

अलबत्ता यह कठोर ही कहा जाएगा। गृहकार्य पूरा करना बालक के हाथ की बात नहीं। उसकी शक्ति विकासमान है, पर न्यून भी है। इसी न्यूनता के कारण वह सोचे मुताबिक गृहकार्य कर नहीं पाता। ऐसे में गृहकार्य पूरा करने पर ही खाना देने का नियम कठोर भी है और त्रासदायी भी।

ऐसा नियम ऊपर से लाभदायी प्रतीत होता है। डर के मारे बालक गृहकार्य कर लेगा, पर उसका लाभ तभी तक दिखेगा जब तक भय है। ऐसे सतही लाभ को लेकर कोई निर्णय नहीं लिया जाना चाहिए कि वह तरीका उचित ही है। कोई काम किसी से जबरदस्ती नहीं कराया जा सकता। गृहकार्य को भी भोजन से जोड़ा जाना एक जबरदस्ती ही कही जाएगी।

प्रश्न : ५

एक बालक में उसके बड़े-बुजुर्गों की सख्ती और दहशत के मारे झूठ बोलने की आदत पड़ गई है। बड़ों का कहना है कि भय और सख्ती नहीं रहेगी तो बच्चा गांठेगा नहीं। क्या यह धारणा सही है ? ऐसे में क्या किया जाए ?

उत्तर

जो परिणाम सामने आया है, बिल्कुल सही आया है। झूठ का मूल है भय। सबसे पहला काम है बालक को उस भय से मुक्त करना। बुजुर्गों वाली धारणा गलत है। भय और सख्ती से बालक वश में आता प्रतीत होता है—मात्र ऊपरी दृष्टि से; भीतर तो वह बड़ों को समाप्त करने की बात सोच रहा होगा। ऐसे में बड़ों को दिनों-दिन सख्ती बढ़ानी पड़ेगी। यह तो नशे-बाजों वाला तरीका हुआ। क्षण भर को सतही लाभ प्रतीत होता है, और बाद में फिर से उसका प्रभाव ठंडा पड़ने लगता ह, परिणामतः भय और सख्ती की मात्रा बढ़ानी पड़ती है। ऐसे में बालक चिकना घड़ा बन जाता है और परेशान करने लगता है। इसका उपाय यही है कि बालक को बड़े-बुजुर्गों से दूर हटा दें, या फिर बड़े-बुजुर्गों से उनके बुजुर्गपने का अधिकार छीन लें। बालक के दिल में, लगता है बुजुर्गों का डर गहरे पैठ गया है, इसलिए बालक को दूसरों के हाथों में सौंप दिया जाए ताकि निर्भय वातावरण मिले। निर्भय बालक ही सच बोलता हैं।

प्रश्न : ६

बालक बाहर से लोगों की शिकायतें लेकर आता है, मार-पीट करके आता है। क्या करना चाहिए ?

उत्तर

अधिकांशतया इसमें उद्दंड बालकों के माता-पिता का भी दोष होता है। वे बालकों की तरफदारी करने के लिए उल्टे उलाहना देने निकल पड़ते हैं। बालक किसी को पीट कर आए, यह गलत बात है। ऐसे बालक को घर में या समाज में संरक्षण नहीं मिलना चाहिए। बालक को उद्दंडतापूर्ण हरकतों से उबारने

से पहले उसके बारे में पूरी तरह से आश्वस्त होना पड़ेगा। स्वयं बालक से और उसके माता-पिता से इस बात का भरोसा लेना जरूरी है कि वह आइंदा वैसी हरकतें नहीं करेगा।

घर से पिट कर जाने वाला बालक दूसरों को पीट कर आता है। डरपोक और पिटने वाले बालक दूसरों को नुकसान पहुंचाया ही करते हैं। वस्तुत: पीटकर आने वाला बालक बहादुर नहीं, कायर होता है। वह माता-पिता का आश्रय तलाशता हुआ लौटता है और माता-पिता उसका पक्ष लेकर उल्टे उसे बिगाड़ देते हैं।

अगर सारे माता-पिता थोड़ी देर के लिए बिना कोई पक्ष-पात बरतें, बालकों को आपस में मिल-बैठकर अंदर ही अंदर लड़ने-भिड़ने को छोड़ दें तो सच मानें, वे अपने अनुभव से स्वत: सही रास्ते आ जाएंगे, याने, परस्पर लड़ चुकने के बाद मित्र बन जाएंगे।

प्रश्न : ७

घर में बालक को अलग जगह देना अच्छी बात है, पर जहां माता-पिता के लिए भी अलग से स्थान नहीं मिलता, वहां बालक को कहां से दें? मामूली हैसियत वाले गरीब लोग इस सम्बन्ध में क्या करें?

उत्तर

अलग स्थान का एक अर्थ स्थूल है और एक सूक्ष्म। कम से कम स्थान में भी बालक अपना काम कर सकता है। अगर बालक के काम और स्थान को घर में सब जने सम्मान दें, जितनी जगह पर वह बैठे, उसे उसी को मानते हुए कोई तब्दीली न करें, तो कहा जा सकता है कि बालक को घर में अलग से स्थान दिया गया है।

अगर बालक को एक बड़ा कमरा दे दिया जाए, और फिर भी उस पर हमारी ही मिल्कियत रहे, तो उस कमरे को बालक स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग में नहीं ला सकता। बालक को कमरे में उठने-बैठने और चीजों को उपयोग में लाने के हमारे नियम मानने ही पड़ते हैं, तब भला अलग से कमरा दे देने पर भी बालक अलग कहां रहा? अलग का अर्थ अच्छी तरह से समझ-कर ही बालक के लिए अलग व्यवस्था की जानी चाहिए।

प्रश्न : ८

बच्चा तीन वर्ष का है, गुड़ बिलकुल नहीं खाता। दाल, शाक या कढ़ी भी नहीं खाता।। दूध बहुत कम पीता है, पर चाय मजे से पीता है। सिर्फ चावल, कोरी दाल, पूड़ी, रोटी या फिर कड़कड़ आवाज करने वाली चीजें, जैसे पापड़ या चने आदि खाता है। क्या किया जाना चाहिए कि वह फल या अन्य चीजें खाने लगे?

दूसरा बच्चा छह वर्ष का है। वह सामान्यतया दाल, शाक, कढ़ी खाता है, पर कम मात्रा में। फल आदि खाने का बहुत शौक है। आम को काट कर खाता है, आमरस-पूड़ी उसे नहीं भाती। बिना मिर्ची का अचार भी वह नहीं खाता। जब ये तमाम चीजें बालकों के सामने बड़े लोग खाते हैं, तो बच्चे आकृष्ट क्यों नहीं होते?

उत्तर

चिंता की कोई बात नहीं है। अगर मेरे घर में ऐसे प्रश्न खड़े हों तो मैं कुछ भी नहीं करूंगा। बालकों की रुचि भिन्न होती है। बच्चे को जो पसंद आए उसे खाकर अगर वह पेट भर ले तो फिक्र की कोई बात नहीं। बस, उसका आहार पौष्टिक व निर्दोष होना चाहिए। व्यंजन उसकी रुचि के अनुरूप बनाए जाने

चाहिए। व्यंजनों को बनाने की विधियों में फेरफार करके भी देखना चाहिए कि वे उसे भाती हैं या नहीं। इस बारे में बच्चों से बातचीत भी करनी चाहिए। बच्चा अगर अचार या ऐसी चीजें नहीं खाता, तो कोई नुकसान नहीं होगा।

मेरी मान्यता है कि अलग-अलग बालकों की अलग-अलग शारीरिक प्रकृति के कारण ही वे विभिन्न प्रकार की चीजें खाते हैं या नहीं खाते। शैशवकाल में जो चीजें वे बिल्कुल नहीं छूते, बड़े होने पर वे उन्हीं में रस लेने लगते हैं। बहुत बार किसी खाद्य-वस्तु के प्रति कोई कटु अनुभव जुड़ा होने के कारण बच्चे उस चीज को खाने से डरते हैं। कई बार जबरन खिलाने की कोशिश किये जाने पर बच्चे खिलाफ हो जाते हैं। और कई बार आहार संबंधी अधिक चिंता-फिक्र की वजह से बच्चे अनुत्साही हो जाते हैं। दूसरे मित्रों के साथ बैठकर खाना खाते समय बच्चे न भाने वाली चीजें भी खा लेते हैं। 'यह मुझे नहीं भाती, ऐसी मनोग्रन्थि बन जाने पर भी बच्चे न यह स्वीकार कर सकते हैं कि अमुक चीज मुझे भाती है, और न वे खा ही सकते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बालक आँतों की या अन्य तकलीफ से ग्रसित हो जाता है। ऐसे में वैद्य या डाक्टर की सलाह लेनी चाहिए। एक बात और, जब तक बच्चा खाता-पीता है, खेलता-कूदता है, दुर्बल या कमजोर नहीं होता, तब तक उसके पौष्टिक आहार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

प्रश्न : ९

बच्चा खाने को ज्यादा मांगता है, और पीछे से जूठा छोड़ देता है, क्या करें?

उत्तर

बच्चे को अभी यह अनुभव नहीं हुआ है कि खाने को कितना चाहिए और कितना नहीं। तभी तो भूख लगने पर वह यह सोचकर खाना मांगता है कि बहुत खाएगा, इसलिए बहुत सारे खाने की जरूरत पड़ेगी। पर भूख मिटते ही बहुत सारा जूठा पड़ जाता है।

अगर बच्चे को आशंका हो जाती है कि मांगने पर फिर खाने को नहीं मिलेगा, इसीलिए वह पहले से ही मांग कर रख लेता है कि न बाद में मांगने की नौबत आएगी, न भूखा रहना पड़ेगा। बीमार बच्चों को माता-पिता जब खाने को ज्यादा नहीं देते, तब वे दुगुना लेने की जिद करते हैं।

या फिर बच्चे बड़ों की देखादेखी करते हैं। अभी तक उनकी समझ में यह बात आई नहीं कि देखादेखी करना बुरी बात है।

या संभव है बच्चे को सबों ने और नजरिये से देखा हो, उसकी उपेक्षा की हो, परिणाम स्वरूप उसमें यह भावना बैठ गई कि मैं उन सबों से छोटा हूं, अनादर-योग्य। इसी विचार से वह बड़ा बनने का दिखावा करता है और अपना हक मांगता है। बड़ी थाली और बड़े पाटे का आग्रह रखने और खूब खाना परोसवाने के पीछे यही कारण हो सकता है।

प्रश्न : १०

बच्चा दूसरों के घर पर कुछ खाए, क्या यह उचित है या अनुचित?

उत्तर

बच्चे की आदत पड़ जाएगी तो क्या होगा, इस आशंका-पूर्ण धारण से उसे खाने न देना गलत है।

बच्चे को भूख लगी है, पर मां दूसरे कामों में लगी है, इसलिए अगर वह दूसरों के घर जाकर खाने बैठ जाए तो यह मां के लिए बुरी बात है।

बच्चे को गरीबी या बीमारी के भय से खाने को पूरा न मिले, और वह जहां-तहां खाने बैठ जाए अथवा खाने का मौका ताके तो यह माता-पिता के लिए अनुचित है।

बच्चे को एक बार बिना समझाये जीमने को कहने, और दूसरी बार बिना समझाये न जीमने को कहने से वह निर्णय नहीं कर पाता, कि कहां खाना चाहिए और कहां नहीं, और इस तरह अगर वह जहां-तहां खाने लग जाए तो यह माता-पिता के लिए अनुचित बात है।

अगर पास-पड़ौसी स्नेही हों, उदार हों, बच्चों को चाहते हों, पर उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखे बिना मात्र खिलाने का ही शौक रखते हों और इस प्रकार बच्चों पर प्रेम जताते हों तो यह उनके पक्ष में गलत है। उनको अच्छी तरह से न समझाने वाले माता-पिता के लिए भी यह गलत बात है।

खाने का वक्त न हो और बच्चा जहां-तहां खाता फिरे और दूसरे लोग उन्हें खिलाते रहें, तो यह दोनों के लिए अनुचित है।

माता-पिता जिन लोगों से न बोलें या जिनसे लड़ें-झगड़ें, उनके वहां जाकर बच्चा अगर वक्त पर खा लेता है और माता-पिता उन्हें डांटते-डपटते या मना करते हैं, तो यह माता-पिता के लिए तो अनुचित बात है, और निर्दोष बच्चे के लिए यह सही कदम है।

अगर मां की ऐसी मनोवृत्ति हो कि बच्चा दूसरों के घर जाकर खा आए, पेट भर आए, और बच्चा जहां-तहां खा आता है, तो यह मां के लिए अनुचित बात है, बालक के लिए भी अहितकर है।

अगर बच्चा कहीं पर खाना खा आए और समझाने की बजाय उसे धमकाया जाए, तो यह बात माता-पिता के लिए अनुचित है।

प्रश्न : ११

किसी बालक की दूसरे बालकों को दांतों से काट खाने की आदत पड़ गई हो, तो क्या उसे काटने दें ?

उत्तर

नहीं, हर्गिज न काटने दें। प्राय: बच्चे किसी की देखादेखी ऐसा करते हैं। सबसे पहले तो वातावरण को शुद्ध बनाया जाए। बच्चा काटता है तो न उसे मारना चाहिए, न समझाना चाहिए, न ही उसकी निंदा करनी चाहिए। बच्चे पर प्रेम रख कर, जब वह अनुकूल प्रतीत होने लगे तब अगर उसे विश्वास में लेकर कहा जाए कि—'ऐसा करो बच्चे !' तो अवश्य उसके मन में समझ पैदा होगी। अगर काटने की बात को एक घटना बनाकर उसकी चर्चा की जाएगी, हंगामा मचाया जाएगा तो बच्चे को इसमें और ज्यादा मजा आने लगेगा। अपनी ओर दूसरों का ध्यान खींचने के लिए बहुधा बच्चा ऐसी क्रिया करता है। और कई बार ऐसी क्रिया करने के लिए हम ही उसे उकसाते हैं। वस्तुत: ऐसी क्रिया के लिए उत्साह व्यक्त करना तो दूर, हमें इसकी खोज-खबर भी नहीं लेनी चाहिए। बच्चे अंदर ही अंदर अपने आप झगड़े निबटा लेते हैं। इस सम्बन्ध में उन्हें खुला छोड़ देना चाहिए। खुद अपने-आप समझ कर बहुत-से बच्चे सही रास्ते पर लौट आते हैं।

अगर बच्चा पागल कुत्ते की तरह कटखना हो गया है तो उसे डॉक्टर को दिखाना चाहिए और अगर घर के ही मानसिक कटखने वातावरण के कारण वह काटने लगा है तो घर के उस वातावरण को दूर करना और समस्या का समाधान करना पहली जरूरत है।

रोना, पीटना, काटना आदि बच्चे के क्रोध व्यक्त करने,

अपना हक मांगने, नाराजगी या नापसंदगी प्रदर्शित करने के माध्यम भी हैं। ऐसे में यह देखने और समाधान ढूंढ़ने की जरूरत है कि हर प्रसंग में बच्चा इन साधनों को क्यों, किस कारण से चुनता है। हक मांगने के लिए बटका भरने वाला बालक हक मिल जाने पर फिर नहीं काटेगा। गैर-वाजिब हक के लिए काटने पर बच्चे को उसके हक हर्गिज नहीं दिये जाने चाहिए। पर अगर लंबे अर्से से काटने की आदत पड़ गई हो और जब तक उसका कोई समाधान न मिले, तब तक कम से कम इतना तो प्रयत्न किया ही जाना चाहिए कि उसे काटने के अवसर न मिलें। अगर बच्चा स्वयं को काटने लगे तो जाहिर है उसमें कोई शारीरिक या मानसिक रोग पैदा हो गया, अत: उसकी फौरन जांच करानी चाहिए।

प्रश्न : १२

बालक अमुक कपड़े ही पहने, और अमुक उसके लिए बनाए गए हैं, फिर भी न पहने, तो क्या करना चाहिए ?

उत्तर

बालक को जो कपड़े नापसन्द हों, वे जबरदस्ती नहीं पहनाने चाहिए, पर इस बात का भी पता लगाना चाहिए कि वह उन कपड़ों को क्यों नहीं पहनना चाहता। बालक की इच्छा का मान रखना जरूरी है, पर साथ ही साथ उसकी इच्छा के कारण जानना और ज्ञात करना कि क्या-क्या वाजबी है क्या-क्या गैरवाजबी, तभी उसके साथ व्यवहार किया जाना चाहिए। अपने कपड़ों को लेकर बालक को कुछ जरा-जरा-सी शिकायतें और असुविधाएं होती हैं, खास तौर से शारीरिक अनुकूलता उसकी मुख्य बात होती है। अतएव यह देखा जाना चाहिए कि उसके कपड़े शरीर पर फबते हैं कि नहीं। उसे

अमुक-अमुक रूप-रंग के कपड़ों का शौक होता है। अगर ऐसे रंग-रूप का उपयोगी कपड़ा दिखे तो वह फौरन चुन लेता है। अगर हम अपनी दृष्टि से बच्चे के लिए कपड़े बनवाना चाहें, तो बेहतर होगा कि बच्चे की पसंदगी और रुचि को सर्वोपरि महत्त्व दें। इससे हमारी परेशानी टल जाती है। कई बार बालक उपयोगिता की दृष्टि को समझ जाता है, फिर भी रूप, रंग, आकार आदि का नजरिया उस पर सवार होकर बाधक बन जाता है। ऐसे में बच्चा और हम मिलजुल कर चलें, यही उत्तम मार्ग है।

प्रश्न : १३

अगर बालक बीमार हो और न खाने योग्य वस्तु की मांग करने लगे, तो क्या देनी चाहिए ? मना करने पर उसका मन दुखी हो, तो क्या करना चाहिए ?

उत्तर

नहीं देनी चाहिए। जब तक वह बीमार है तब तक हम उसके वैद्य हैं और उसके बजाय हमें निर्णय लेने का अधिकार है। बीमारी में हम उसकी इच्छा के वशीभूत हो जाएं, ऐसा नहीं होना चाहिए। हमें उसे इस तरह मना करना होगा, कि उसका बीमार मन दुखी न हो। एक के बजाय दूसरी ऐसी चीज खाने को दी जाए कि उसे पसंद आ जाए और साथ ही साथ मनाही भी हो जाए। बीमारी में शरीर को स्वस्थ बनाने के प्रयास में कहीं मन को बड़ा आघात न लग जाए, यह बात बराबर ध्यान में रख कर, विवेकपूर्वक ना करनी चाहिए, याने प्रेम से ना कहना उचित होगा। दृढ़ता हो पर कटुता न हो, बड़ी ही कोमलता के साथ उसी का बनकर मना करना चाहिए। बीमारी में गैर-जरूरी चीज खाने की स्वीकृति देने से

बालक खुश ही होगा, पर अगर उसकी भयंकरता को समझ लेगा तो हमें नालायक ही समझेगा। स्वास्थ्य-लाभ करने के बाद लंबी अवधि के अनंतर जब बालक स्वयं 'ना' का महत्त्व समझ जाएगा, तब उल्टे हमारे प्रति उसका मान और विश्वास अधिक बढ़ जाएगा।

प्रश्न : १४ क

पिता को शराब पीने की लत है और समझाने पर भी वह बालक के सामने अगर शराब पीये, तो क्या करें ?

उत्तर

तो बालक को पिता के घर से दूर हटा देना चाहिए। इसके लिए अगर माँ को पति का घर छोड़ने की नौबत आ जाए, तो छोड़ देना चाहिए। अगर पति का अपनी पत्नी के प्रति प्रेम शराब छुड़ाने में सहायक न हो तो पत्नी को उस प्रेम की निष्फलता समझ कर अपने पुत्र-प्रेम के लिए सांसारिक सुखों का खुशी-खुशी त्याग कर देना चाहिए।

प्रश्न : १४ ख

पर अगर पिता बालक के अभिभावकत्व का दावा करके बालक को अपने कब्जे में ले ले, तो क्या किया जाए ?

उत्तर

अभिभावकता का नियम बालक के भले के लिए है। अगर शराबी पिता बालक का अहित करता है तो अभिभावकत्व भी उसके हाथ में रहने का नहीं। अगर शराब पीने वाले न्यायाधीश यह कहते हों कि शराब पीने से अभिभावकत्व को कोई क्षति नहीं पहुंचेगी, तो अभिभावकता-नियम के सामने मां के प्रेम का नियम खड़ा किया जा सकता है। जिस पुत्र-प्रेम

के कारण माता अपने पति को छोड़ सकती है, उस प्रेम के लिए अभिभावकत्त्व-नियम का विरोध करते हुए कदाच जेल भी जाना पड़े तो मां को अवश्य जाना चाहिए। अपने पुत्र को छाती पर बिठा कर मां बैठे और फिर कहे : "पति के जुल्मों और क्रूरताओं के विरोध में, कानूनों के सामने, जेल और अफसरशाही के विरोध में लो मैं यह बैठी ! मेरा कुछ बिगाड़ना हो तो बिगाड़ लो।" तो ऐसी मां के पुत्र को कोई भी नहीं छीन सकेगा। अगर ऐसी एक भी माता बाहर निकल आएगी, तो सैंकड़ों पामर पिताओं को ठिकाने लगाने के लिए काफी है वह !

प्रश्न : १५

पिता की इच्छा है कि बालक को गांव की शाला में भर्ती कराए और मां चाहती है उसे मोंटेसरी या किंडरगार्टन शाला में प्रवेश दिलाए, तो क्या करना चाहिए ?

उत्तर

अगर यह सवाल पिता की तरफ से पूछा गया है तो मेरा जवाब उनके लिए यह है कि गांवड़ी शाला में बालक को भर्ती मत कराना। स्वयं जाकर पहले उन शालाओं को देखो ! क्या वहां आपके बच्चे सुखी रहेंगे ? क्या वहां आपके बच्चों को अच्छी शिक्षा मिल सकेगी ?

अगर बच्चे की पढ़ाई में आप रुचि न रखते हों, तो बच्चे की मां जो शाला पसंद करे, उसमें माथापच्ची न करें। आप घर में बड़े हैं. अगर इसी अधिकार से माता पर हुकम चला कर अपनी निर्धारित शाला में बच्चे को भर्ती कराएंगे, तो मां और बालक इस इंतजार में रहेंगे कि कब उन्हें मौका

मिले और वे आप पर हुकम चलायें। जब वे आप को हुकम देंगे, तो आपको भारी पड़ेगा।

अगर यह सवाल माताओं की ओर से पूछा गया है तो जवाब यह है कि वे बालक के पिता को शांतिपूर्वक समझाएं। ग्रामीण शालाओं के दोष उन्हें नजरों से दिखाएं। अच्छी शालाएं दिखाने ले जाएं और बालक को आपके हाथ में सौंप देने का उनसे अनुरोध करें। प्राय: कर तो वे यह काम आपको ही सौंपेंगे, क्योंकि वे अपने व्यवसाय में लगे हुए हैं और इस तरह की पंचायत करना वे माथापच्ची समझते हैं। वे ऐसे व्यवसायी हैं कि घर के अधिकांश काम स्त्रियां निबटाती हैं, तो उनमें से वे कोई भी काम नहीं करते। जाहिर है आप लोगों की मांग पूरी होगी।

लेकिन अगर जबरदस्त बाधा आ पड़े, तो जो समझदार है, उसे अपना आग्रह छोड़ देना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में घर में क्लेश पैदा न करने और बालक का लालन-पालन करने के लिये यही बेहतर होगा कि माता या पिता दोनों में से किसी एक के निर्णय को मान लिया जाए और दूसरा पक्ष बड़े ही प्रेम तथा नम्रता के साथ अपनी बात को छोड़ दे।

प्रश्न : १६

बालक माटी खाए तो क्या उपाय करने चाहिए?

उत्तर

अनेक डॉक्टरों की मान्यता है कि माता जब बालक की गर्भावस्था में मिट्टी खाती है तो बालक भी खाने लगता है। कई डॉक्टर यूं भी मानते हैं कि बालकों को अमुक क्षारों की आवश्यकता होती है और वे उसे उसके शरीर या खुराक से

नहीं मिलते तो वह माटी खाने लग जाता है ताकि उससे प्राप्त कर सके।

यह बात सही है कि माटी में स्वाद होता है। जब बालक खाता है तो उसे उसका वही स्वाद प्राप्त होता है। एक बार टेव पड़ जाने पर वह बार बार खाने लग जाता है। उससे छुटकारे का उपाय जानने के लिए बालक को डॉक्टर या वैद्य के पास ले जाना चाहिए। ऐसा एक भी मौका नहीं देना चाहिए कि बच्चे को मिट्टी खाने की छूट मिले। ऐसा कोई उपदेश देने की जरूरत नहीं है कि मिट्टी खाने की जरूरत नहीं है, कि मिट्टी खराब है, नहीं खानी चाहिए। इसके बजाय बिना कुछ बोले ही उसका रास्ता बंद कराना चाहिए।

प्रश्न : १७

बालक अंगूठा या अंगुलियां चूसता है, क्या करना चाहिए?

उत्तर

यह आदत पड़ने के अनेक कारण हैं और नुकसान भी हैं। इस आदत को रोकने के लिए ऐसा प्रबंध किया जाना चाहिए कि बच्चे का हाथ मुंह में न जाए। या तो उसके हाथ, अंगूठे, अंगुलियों आदि को किसी थैली में डलवा दो, या मुंह में जाने से रोकने के लिए हाथ बांध दो। बच्चा जब जब अंगूठे-अंगुलियां मुंह में डाले, तभी धीरे से वापिस निकाल लेने चाहिए। अंगूठे पर ऐसी कोई कड़वी चीज या गैर-नुकसानदायी आलेप लगा देना चाहिए। अगर बराबर ध्यान रखा गया तो एक बार पड़ी यह आदत धीमे-धीमे चली भी जाएगी। कहने, धमकाने, उपदेश देने या लालच देने से ऐसी बुरी आदत जाती नहीं, क्योंकि बालक इसके वशीभूत हो चुका है। अगर वह स्वयं सोच ले कि अंगूठा मुंह में नहीं डालना चाहिए, तब भी मुंह में चला

जाता है, और रात को नींद में लेटा हो तब भी ऐसा ही होता है। अतः ऐसी आदत को दूर करने के लिए आसान प्रयत्न अनवरत किया जाना चाहिए और बड़े धीरज व शांतिपूर्वक— बालक पर दोष मंढे बगैर। बच्चा अगर उम्र में बड़ा हो गया हो तो उसे कहना चाहिए कि अंगूठा चूसने वाले के दांत कैसे बिगड़ जाते हैं, मुंह कैसा कुरूप हो जाता है। वैसे चित्र भी दिखाए जाने चाहिए। पर अधिक बल तो यह आदत छुड़ाने पर ही देना चाहिए।

प्रश्न : १८

अगर बच्ची को चुप रहने के लिए कहा जाए—'रो मत, मैं तुझे नई चूड़ियां दिला दूंगी', तो क्या इसे लालच समझा जाएगा ?

उत्तर

बिल्कुल, लालच ही है। ऐसे नहीं कहना चाहिए।

प्रश्न : १९

बालक को किस उम्र तक मां दूध पिलाये ?

उत्तर

होशियार डॉक्टर या वैद्य से इसके बारे में पूछना चाहिए। पर एक बात तो ध्यान में रखनी चाहिए कि अमुक उम्र तक माता बालक के लिए पोषण-स्थल है, अतः तब तक तो उसे दूध देना ही चाहिए। बालकों को दूध न पिलाने की हवा शहरों के बड़े लोगों और संस्कारी माता-पिताओं में ज्यादा फैली हुई है। वे लोग बहुत बड़ी गलती कर रहे हैं। प्रकृति ने बालक के पोषण हेतु जो साधन और समृद्धि दी है, उसका समुचित उपयोग होना चाहिए। माता अगर निर्बल है तो वह

अपनी शक्ति को बढ़ाए और बच्चे को पर्याप्त दूध पिलाए। अपनी अशक्ति के परिणामस्वरूप बोतल का या धाय का दूध पिलाना शर्मिंदगी और दुख-रूपी समझना चाहिए। गांवों में इससे उल्टी रीत चलती है। वहां सब माताएं बच्चों को अपना दूध पिलाती हैं, पर छुड़ाने का समय आ जाने के बावजूद पिलाना जारी रखती हैं। वे बालक को लंबे समय तक दूध पिलाने में ही उसकी भलाई समझती हैं। परिणाम-स्वरूप पांच-छह वर्ष का हो जाने पर भी बालक मां का दूध पीता रहता है। इससे माता का निरोग दूध बालक को नहीं मिलता। दूध के अलावा भी बालक को आहार लेना चाहिए, उसी के अभाव से उसका संतुलित पोषण नहीं हो पाता, बल्कि बालक उल्टा दुर्बल होता जाता है। इसलिए छोटी उम्र में मां को बालक को दूध पिलाना चाहिए, पर कब छुड़ाए इस बारे में डॉक्टर से परामर्श लेना चाहिए। इसके साथ ही साथ बालक की जरूरत, दूसरा आहार लेने की क्षमता, मां की शक्ति-अशक्ति आदि का भी ध्यान रखना वांछनीय होगा।

प्रश्न : २०

बालक को लेकर जब बाजार जाता हूं तो वह केले वाले की दुकान आते ही केले, चने वाले की दुकान आते ही चने, रेवड़ी वाले की दुकान आते ही रेवड़ी आदि चीजें दिलाने की मांग करने लगता है। ऐसे में क्या करें ? जो मांगे वह दिला दें ?

उत्तर

जो मांगे वह दिलाने की कोई जरूरत नहीं। बालक जो कुछ मांग करे वह दिलाई ही जाए, यह सोचना गलत है। उसे वांछित चीजें दिलाते वक्त इतना सोच लेना चाहिए कि क्या वे बालक के लिए उपयोगी हैं ? तात्कालिक जरूरत की हैं ? कहीं

वह हानिकर या ऐसी तो नहीं कि जो ऊपर से दिखावटी हो और बच्चे से पैसे निकलवा ले या जो उसे मात्र लुभाए ? कहीं बालक के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाली तो नहीं ? कहीं वह चीज ज्यादा मंहगी तो नहीं ? सामान्यतया जिस तरह से हम अपनी आवश्यकता की चीजें बाजार से खरीदते हैं, वैसे ही बालक को भी खरीदने की छूट देनी चाहिए। धीमे-धीमे ऐसा प्रयास करने की जरूरत है कि बालक की अपनी पसंद की चीजें खरीदने की क्षमता का विकास हो। कभी-कभार बालक की इच्छा को संतुष्ट करने के लिए वांछित चीजें दिला भी देनी चाहिए, पर यह रोकना भी जरूरी है कि उसकी इच्छित चीजें कितनी लाभदायी और जरूरी हैं। अगर हम उसे इच्छित चीजें दिलाने की स्थिति में न हों, तो उसे मूल कारण अवश्य बताना चाहिए। फिर भी बच्चा न समझे तो मना कर देना चाहिए और मनाही पर दृढ़ रहना चाहिए।

प्रश्न : २१

बालक सात वर्ष का होने पर भी स्कूल नहीं जाता, क्या उसे जबरदस्ती भेजा जाए ?

उत्तर

नहीं, जबरदस्ती न भेजें। इससे बालक पढ़ेगा नहीं। सात वर्ष का होने पर भी स्कूल न जाए तो कोई हर्ज की बात नहीं। दुनिया भर की शालाएं बंद कर डालें तब भी बालक को कोई नुकसान नहीं होने का। बल्कि आजकल की शालाएं बंद हो जाएं तो बहुत लाभ ही होगा।

बालक स्कूल नहीं जाता, तो इसका कारण ज्ञात करना चाहिए। क्या स्कूल खराब है ? मास्टर नापसंद हैं ? बालक को वहां कोई परेशानी है ? कोई कठिनाई है ? कहीं हमारे

बार-बार शाला जाने के आग्रह के कारण बालक को शाला जाने से अरुचि हो आई है ? क्या उसे शाला का गलत भय बैठ गया है ? या घर का प्रेम ज्यादा है ? माता या घर का अन्य सदस्य जैसे-तैसे उसे घर में तो नहीं रखना चाहता ? क्या बालक स्वयं कमजोरी के मारे स्कूल जाना नहीं चाहता ? या घर में जो ज्ञान बालक को मिल रहा है वह अभी पूरा नहीं हुआ ?

प्रश्न : २२

आंखों में काजल डालने से बालक रोता है। क्या उसे रुलाने के बावजूद काजल डाला जाए या नहीं ?

उत्तर

काजल डालना चाहिए या नहीं इस संबंध में डॉक्टरों में मतभेद हैं। अगर आपका वैद्य इसकी अनुमति देता है तो जरूर डालिये, फिर तो वह दवा-रूप होगा। लेकिन यथा-संभव बालक को रुलाये बिना काजल डालना चाहिए। बच्चे का हाथ पकड़कर काजल डालने से ऐसा अनुभव उसे बहुत कड़ुवा लगता है, और काजल डलाने के नाम पर वह उपद्रव करने लगता है। बहुधा काजल आँख में जलन पैदा करता है, इस वजह से भी बच्चा आनाकानी करता है। अगर उसे शांत रखकर डालें तो बच्चा धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाता है और खुशी-खुशी काजल डलवाने दौड़ा आता है। अगर बच्चा रोजाना ही काजल डलवाते वक्त रोता है तो समझ लें कि वह उसके लिए परेशानी का कारण है, अतः छोड़ देना चाहिए।

प्रश्न : २३

पांच वर्ष से कम आयु के बच्चे को बिना बाहों वाली कफनी पहनानी ठीक रहेगी या झबला ?

उत्तर

कफनी ठीक रहेगी। कपड़ों को लेकर कई बातों पर विचारना पड़ता है। इस बाबत में ऋतु, कपड़ा, फैशन, कपड़े की किस्म, बालक की आजादी और आरोग्य आदि प्रश्नों को ध्यान में रखकर तय करना चाहिए। झबले से तो कफनी बेहतर रहती है। अनुभव करके देख लें। समझ में आ जाएगा।

प्रश्न : २४

तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चे को अनाज का आहार देना चाहिए या नहीं ?

उत्तर

इस संबंध में डॉक्टर-वैद्य से ही परामर्श लेना चाहिए।

प्रश्न : २५

बच्चा दस वर्ष का है। मुँह को खुला रखता है। मना करने पर भी समझता नहीं। क्या करें ?

उत्तर

होशियार डॉक्टर को ले जाकर जांच करानी चाहिए। गले में टॉन्सिल या कंठशूल हो सकता है। अगर उसका गला भीतर से दुखता होगा, तो आपका कहना बेकार है। तुरंत डॉक्टरी सलाह लें।

प्रश्न : २६

दस वर्ष का बालक है। फीका दूध नहीं पीता, मीठा भाता है। क्या उसे चीनी डालकर दूध दें ?

उत्तर

कोई हर्ज नहीं। थोड़ी-बहुत चीनी डालकर खुशी से

पिलाइए। पर चीनी को दूध के साथ उबालना चाहिए।

प्रश्न : २७

बालक बाजार की चीजें खाने की इच्छा करे तो देनी चाहिए या नहीं ?

उत्तर

बाजार की बजाय घर पर बना कर दें तो बेहतर होगा। बाजार की चीजों का माल अच्छा नहीं होता, गंदा होता है। मक्खियों के बैठने से वे गंदी और रोगों का कारण बन जाती हैं। अत: यथासंभव बाजार की चीजें छोड़ कर घर पर ही बनानी चाहिए।

प्रश्न : २८

मेरा बच्चा मोहल्ले के बालकों को बिना-बात मारता है। मुझे क्या करना चाहिए ?

उत्तर

आपको धन्यवाद कि आप बच्चे का पक्ष नहीं लेतीं। आपने बच्चे के दोष को जान लिया, इससे अब वह आगे नहीं बिगड़ पाएगा। क्या बच्चा घर में अकेला है—एक मात्र ? क्या वह घर में सबसे छोटा है ? बहुधा ऐसे बालक सबों के मुंह चढ़े होते हैं और इसी कारण वे जैसा व्यवहार करते हैं, वैसा चलने दिया जाता है। घर का यही व्यवहार लेकर बच्चा गली में जाता है।

छोटे बच्चे खेल-खेल में जब माता-पिता को मारते हैं, और वे उस क्रिया को मनोविनोद मानकर उन्हें प्रोत्साहित करते हैं, तो धीरे-धीरे बच्चा उस हंसी से एक अन्य दिशा में चला जाता है। खेल की आदत मारने-पीटने की आदत बन जाती है।

जो माता-पिता बालकों का पक्ष लेकर उल्टे सामने वालों से लड़ने जाते हैं, उनके बच्चे बदमाश हो जाते हैं। वे दूसरों के बच्चों को मारते हैं।

एक ही घर में जहां एक साथ ननद-भोजाई या देवर-जेठ साथ-साथ रहते हों, वहां लड़ाकू की भांति तकरार करने वाली माता बालक को इतना बदमाश बना सकती है कि दूसरों को मारने लगे। बच्चा ऐसी धारणा बना कर दूसरों को तंग करेगा कि जैसे मां का कोई नाम नहीं लेता, वैसे ही उसका भी नहीं लेगा।

ऐसे बालक को थोड़ा अनुभव हासिल करने की जरूरत है। हमें उसे समझाना पड़ेगा कि, "देख भैया, अगर कोई तुम्हें पीटे और तुम्हें चोट लगे तो जिस तरह तुम्हें पसंद नहीं आएगा, वैसे दूसरों को भी पसंद नहीं आएगा। इसके बावजूद अगर तुम किसी को मारते हो और बदले में सामने वाला तुम्हें मारता है तो मैं कुछ नहीं कर सकूंगा। मार तुम्हीं को खानी पड़ेगी।"

इतनी सलाह से अगर बच्चा समझ जाता है तो ठीक, नहीं तो उसे सामाजिक कानून का अनुभव करने दिया जाए। गली के बच्चों को इकट्ठा करके कह देना चाहिए कि "देखो भैया, अगर यह लड़का तुम्हें पीटता है, तो तुम भी इसे पीट सकते हो।" अगर गली में कोई पीटने के लिए आता है तो गली के सारे लड़के मिलकर उसे निकाल बाहर कर सकते हैं; उसे पकड़ कर उसके घर छोड़ सकते हैं; उससे बात-व्यवहार बंद कर सकते हैं; और उसे सजा भी दे सकते हैं। इसके बाद मारपीट करने वाले बालक को जो अनुभव होंगे, उनसे उसे बहुत-कुछ सीखने को मिलेगा, और वह यह तक नहीं बता पाएगा कि यह सीख उसे कहां-कैसे मिली।

पर यह उपाय ऊंचे दर्जे का नहीं है। मार-पीट करने

वाला बालक इससे रुक तो जाएगा, पर एक दुर्बलता उसमें घर कर जाएगी, परिणामतः वह ईर्ष्यालु बन जाएगा। मन में द्वेष रखकर अपने विरोधी बालक को अकेले देखने की घात लगाएगा, और क्षति पहुंचाएगा, या फिर अपने से छोटे बालकों को पीटने के मजे लेगा। याने सामाजिक-नियम से न मूल तकलीफ मिट सकेगी, न हृदय शुद्ध हो सकेगा। हां, समाज को वह नियम तात्कालिक नुकसान से बचा सकता है, उपद्रवी व्यक्ति को रोक भी सकता है, पर उसे बिल्कुल नहीं बदल सकता। याने उसका हृदय-परिवर्तन नहीं कर सकता।

ऐसे में उत्तम उपाय तो यह होगा कि गली के बालकों को यहां बुलवाया जाए और अपनी देखरेख में उन्हें सर्जनात्मक प्रवृत्तियों में लगने का अवसर दिया जाए। देखरेख की जरूरत इसीलिए है कि शुरू-शुरू की मुश्किलों को हम दूर कर सकें। सृजनात्मक कार्यों में साथ लग जाने वाले बालक लड़ना-भिड़ना भूल ही जाएंगे। सृजन का और उसमें भी रुचिकर सृजन का आनन्द अद्भुत है। सर्जनात्मक प्रवृत्ति के साथ-साथ बालक के शरीर एवं मन का अनुशासन जैसे ही जाग्रत होगा, उसके भीतर की आत्मा का प्रतिबिम्ब बाहर पड़ने लगेगा। इसी का नाम है प्रेम तत्त्व। प्रेम तत्त्व को विकसित करने के मार्ग पर बालकों को ले जाने से उनके बीच झगड़े-टंटे समाप्त हो जाएंगे।

जो मार्ग बालकों के लिए है वही बड़ों के लिए भी है। अगर दुनिया साथ मिलकर जीवन के सुखों की सह-साधना करें तो प्रेम-तत्त्व का भी विकास हो और जीवन की वर्तमान कटुता भी घटे।

बड़े लोग तो जब से ही ऐसा करना शुरू कर देंगे, तभी से

बेहतर है, बच्चों को कटुता का शिकार होने से पहले ही हमें मधुरता के रास्ते पर ले जाना चाहिए।

प्रश्न : २९

जब मैं गांव जाता हूं तो मेरा बच्चा भी मेरे साथ चलने की जिद करता है और पीछे लग जाता है। क्या करना चाहिए ?

उत्तर

लगता है बच्चे के लिए घर छोटा पड़ता है। अब वह गमले का बिरवा नहीं रहा। वह शहर देखना चाहता है। कदाचित, बच्चा बुद्धिमान हो तो सोचता होगा कि "पापा रोजाना बाहर जाते हैं। क्या होगा वहां ? बाहर जाकर क्या करते होंगे वे ?" संभव है आपका बच्चा ऐसी जिज्ञासा को तृप्त करना चाहता हो। या संभव है कि जब कभी बच्चे को पापा के साथ बाहर जाने का मौका मिला हो, तभी उसे कुछ न कुछ देखने को, खाने-पीने को, खिलौना या ऐसा ही कुछ मिला हो, और इसीलिए वह उस पुराने अनुभव को फिर से प्राप्त करने के लिए बाहर जाना चाहता हो। संभव है और कारण भी हों। पर हमें इस बात का पता लगाना चाहिए कि बालक किसलिए बाहर जाना चाहता है। पापा के साथ बाहर जाने वाले बच्चे को पान मिलता होगा, या पड़ौस की दुकान से ग्रामोफोन सुनने को मिलता होगा—शायद इसीलिए वह पापा के साथ जाना चाहता हो। जिद तो एक हथियार मात्र है। अगर हम फौरन समाधान नहीं करेंगे तो बालक रोने लग जाएगा।

पिता को चाहिए कि वह कारण जाने। ऐसा नहीं है कि बालक को अपने साथ न ले जाया जाए। संभव हो तो उसे दुकान पर ले जाए, या बाजार से उसकी इच्छा की कोई चीज

खरीद दे। बालक की इच्छा को जानना (अगर वह बुद्धिमान है) आसान होगा। कई बच्चों की इच्छा को जानने में समय लगता है, पर धैर्यपूर्वक तथा अवलोकन से उनकी इच्छा जानी जा सकती है। अपने बच्चों के लिए भी पिता को इतना ही धैर्यवान बनना पड़ता है। जब बच्चा बाहर जाने का आग्रह करता है तो वह खुलापन चाहता है, घूमना चाहता है, हवा और प्रकाश तथा नई-नई चीजें देखना चाहता है। ये सब उसकी शक्तियों के विकास हेतु जरूरी हैं। अतः बालक को सप्ताह-पन्द्रह दिनों से बाहर गांव में घुमाने ले जाना चाहिए। एक बार जब वह इनसे अधा जाएगा तो बाहर जाना पसन्द ही नहीं करेगा। विकास में अलग-अलग समय आते हैं, उनमें से एक समय "गांव, बाजार आदि में क्या है" यह देखने-जानने का आता है। ऐसा समय प्रत्येक बालक के जीवन में जरूरी है। इससे पता चलता है कि बालक के विकास का स्तर बढ़ा है। माता-पिता को उसे उत्तर देना ही चाहिए।

प्रश्न : ३०

बालक पांच वर्ष की उम्र का हो गया, पर अभी तक मात्र काका, मामा, दादा ही बोल पाता है। क्या करना चाहिए ?

उत्तर

इस प्रश्न के उत्तर में कुछ प्रश्न पूछने पड़ रहे हैं—क्या बालक कानों से अच्छी तरह सुनता है ? क्या डॉक्टर से उसके कानों की जांच कराई है ? क्या घर में बालक के साथ दूसरे खेलने वाले हैं ? क्या माता-पिता को उससे बातें करने का अवसर है, बातचीत करते हैं ? क्या बालक की जीभ में कोई कमी है ? उसकी जांच डॉक्टर से करवाई ? इस संबंध में तो कभी से डॉक्टर के पास जाकर मिल लेना चाहिए था।

दूसरे, बालक मुख्यत: दो इन्द्रियों—कान और आंख की मदद से बोलना सीखता है। कानों से उच्चारणों को सुनता है और आंखों से हमें बोलते देखता है तथा हमारे मुंह के ऊपर वाले स्नायुओं के हिलने-डुलने को भी ध्यान में रखता है। मूक-बधिर बालक आंखों की मदद से ही बोलना सीखते हैं।

बहुत-से बालक कानों से सुनते जरूर हैं, पर उनके कान कुछ बहरे होते हैं। इस वजह से उन्हें पूरा सुनाई नहीं देता। वे सुनने में पिछड़ जाते हैं और कुदरतन सुनकर बोलना सीखना उनके लिए मुश्किल हो जाता है। बच्चा तीव्रता से अच्छी तरह सुनता है या नहीं, इसका भरोसा करने के लिए उसे दूर की आवाज भी सुनवाई जाए और पास की धीमी-धीमी भी। अगर पता चल जाए कि वह कुछ बहरा है तो उसका इलाज कराइए। इसके साथ ही साथ उसके कान तीव्र बनें, इसके लिए इन्द्रियों का शास्त्रीय शिक्षण भी कराया जाना चाहिए। इससे कर्णेन्द्रिय को सूक्ष्मातिसूक्ष्म ध्वनियां सुनने में सक्षम बनाया जा सकता है। बचपन से ही बच्चे को अच्छी तरह से बोलना आ जाए तो समझ लें कि उसके कान तीव्र हैं।

अगर बालक अकेला रहता है, या ऐसा संयोग हो कि अधिक वक्त तक उसे अकेला रहना पड़े, तो उसे कानों से भाषा सुनने का मौका नहीं मिलता। भाषा सामाजिक-जीवन की आवश्यकता है। जिस बालक के आसपास सामाजिक-जीवन कम होता है या कत्तई नहीं होता, उसकी भाषा का विकास नहीं होता। इस बारे में भी जांच-पड़ताल कर लेनी चाहिए।

प्रारंभिक भाषा शिक्षण के निर्माण में घर की भूमिका ज्यादा होती है। परिश्रमी माता-पिता के बच्चों को घर में कोई बुलाने वाला या वार्तालाप करने वाला नहीं मिलता। इससे बालक की कर्णेन्द्रिय को सुनने का अवसर नहीं मिलता और भाषा शुरू नहीं होती। कई घरों में जहां सब लोग जल्दी-जल्दी बोलते हैं या शोरगुल मचाते हैं, वहां के बालकों को भी भाषा बोलना सीखने में समय लग जाता है।

जिस प्रकार दांत उगते हैं उसी प्रकार से भाषा भी उगती है, बस उसे पोषण की आवश्यकता है। और पोषण है शुद्ध भाषा का, शांति का। शांति में सबों का सुन्दरतापूर्वक समग्र विकास होता है।

अगर इन्हीं बातों को लेकर बालक के लिए कोई न्यूनता रह गई हो तो उसे पूरा किया जाना चाहिए, और साथ ही साथ डॉक्टर की सलाह लेनी चाहिए।

प्रश्न : ३१

मेरा बच्चा स, ष, ळ अक्षरों का उच्चारण सही तरीके से नहीं कर पाता, क्या करना चाहिए ?

उत्तर

प्रश्न स्वाभाविक है, ऐसा कई बार होता है। इसका कारण यह है कि बालक के आसपास की भाषा का वातावरण इतना शुद्ध और स्पष्ट नहीं है। अधिकांश लोग इन अक्षरों का शुद्ध उच्चारण नहीं करते। इसका समाधान बड़े ही धैर्य से, बालक को परेशान किये बिना किया जाना चाहिए। प्रत्येक अक्षर अपने स्थान-भेद के कारण भिन्न है—श तालव्य है, स दन्त्य है और ष मूर्धन्य। बालक से इन वर्णों का उच्चारण इन्हीं निर्धारित स्थानों से कराने का श्रम करना चाहिए। यह जानकारी पहले हमें अपने लिए समझने की है ताकि हम सही हो जाएं। श के लिए तालव्य की तरफ जीभ उठा कर ध्वनि निकलवाई जाए, स के लिए दांतों से जीभ छूकर ध्वनि निकलवाई जाए, तथा ष के लिए दांत और तालु के बीच, याने दोनों की

छुए बगैर मुंह के बीच जीभ मोड़कर उच्चारण करवाना चाहिए।

पर ऐसा प्रयास करने का मजा बालक को आसानी से नहीं आ पाएगा। सही विधि तो यह है कि जिन शब्दों में श स ष वर्ण प्रयुक्त हुए हों, वे शब्द पूरे के पूरे उच्चारित कराने चाहिए। पर ये शब्द बालकों द्वारा बुलवाने से पहले काफी समय तक उन्हें सुनवाने भी चाहिए। भाषा-शुद्धि की बुनियाद कान हैं। भाषा का वाहन है मुंह। मुंह को तैयार करने की अपेक्षा कानों को संस्कारित करना ज्यादा ठीक होगा।

ळ का उच्चारण कई बच्चे ङ या र की तरह करते हैं और इसका भी कारण आसपास का माहौल ही है। इसे सही करने का एक उपाय तो है शब्द का शुद्ध-श्रवण और दूसरा है भाषा-व्याकरण का ज्ञान। जीभ को मोड़कर तालु के मध्य भाग में ले जाएं और वहां से उच्चारण करेंगे तो ळ का सही उच्चारण निकलेगा।

प्रश्न : ३२

एक दिन मैं बैंगन का साग सुधार रही थी। अक्सर साग सुधारते समय उसका कचरा बेबी ही उठाकर कर फेंकती है। एक बैंगन मेरे हाथ में था और दूसरा मेरे पास रखा था। बेबी ने उसे उठाकर कहा—'इसे नीचे फैंक दूं ?' मैंने कहा : 'नहीं, यह तो साग है।' वह बोली : 'नहीं, मैं इसे फैंकती हूं।' और ऐसा कह कर वह चल दी। 'वापिस ले आ, बेटी ?' कहते हुए मैं उसे लेने गई, कि खिड़की के पास पहुंचते ही उसने बैंगन को फैंक दिया, और वह सामने की नाली में जा गिरा। मेरे हाथ से एक चपत लग गई, और वह जोर से रोने लगी। ऐसे में मुझे क्या करना चाहिए ?

उत्तर

इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले एक उपालंभ देना चाहता हूं। 'बेबी' शब्द के प्रयोग की इतनी उत्कंठा क्यों रखती हैं ? बच्ची, बेटी आदि प्यार-भरे शब्दों से क्या काम नहीं चलता ? अनुकरण में हम इतने ज्यादा आगे न बढ़ें, तो ?

अब मुख्य प्रश्न पर आइए। जिस वक्त बेबी ने पूछा था कि 'मैं बैंगन बाहर फैंक दूं ?' उस वक्त आपको उससे पूछना था : 'क्यों फैंक दे ? फिर बैंगन कहां जाकर गिरेगा ? लाएगा कौन उसे उठाकर ? नाली में गिर जाएगा तो साग कैसे बनेगा ?' अगर ऐसे प्रश्न मधुरता से पूछे होते तो बेबी के मन में बैंगन फैंकने का एकाएक उठा हुआ आवेश रुक जाता, क्योंकि वह सोचने लग जाती और उसके आवेश पर संयम आ जाता।

बेबी को तो एक प्रयोग करना था कि 'अगर बैंगन फेंक दूं तो देखें क्या होता है ?' और सचमुच उसका प्रयोग पूरा भी हुआ। बेबी को प्रयोग के परिणामस्वरूप चपत मिली, उसे रोना पड़ा, और बैंगन बेकार गया आदि। पर बेबी ने ऐसा परिणाम सोचा नहीं था। उसका मन कदाचित ऊपर से नीचे गिरने वाली वस्तु की गति देखना चाहता था, या कदाचित कोई अन्य अनुभव करके देखने की इच्छा थी। पर हम लोगों को बालक की कल्पनाओं या उनके प्रयोग क्षेत्रों का पता होता नहीं, अतः उन्हें पूरा करने में हम व्यवधान बन जाते हैं। इससे बालक का प्रयोग नष्ट हो जाता है और एक प्रसन्नचित्त बालक थोड़ी ही देर में रोने लग जाता है। एक बैंगन कोई बड़ी चीज नहीं थी। फैंक दिया गया तो नीचे से लाया जा सकता था। पर जब हम बालकों के हेतु को समझने में अक्षम हो जाते हैं या उनके प्रति उपेक्षित हो जाते हैं, तब बालक के और

हमारे बीच एक खींचातानी शुरू हो जाती है और परिणाम कुछ का कुछ हो जाता है। अगर बेबी के पीछे न दौड़ा जाता और उससे बातें की जातीं तो उसे सोचने-विचारने का अवसर मिला होता। लेकिन जब उसे मना किया गया तो वह फौरन चलने लगी, और जब उसके पीछे दौड़ा गया तो उसने दौड़कर तत्काल अपनी इच्छा को क्रियान्वित कर डाला। सच मानें तो हमने ही उसे इस परिणाम की तरफ वेग से धकेला था।

खैर, बैंगन नीचे गया, नाली में गिरा और बेकार गया। यह सब हो गया, नुकसान भी हो गया। लेकिन तब बेबी को चपत क्यों मारी? बैंगन फैंकने के लिए या बैंगन नाली से वापिस निकल आए, इसलिए! सच बात तो यह है कि फिर गुस्सा आ गया था, और गुस्से में बेबी के चपत जड़ दी गई! अगर हम यही सोचने बैठ गए होते कि बेबी ने ऐसा क्यों किया, या बेबी से ही इसकी वजह पूछी होती, या बैंगन बेकार जाने का भयंकर परिणाम उसे समझाया होता, तो गुस्से को मौका नहीं मिलता। कारण, जब तक बुद्धि सावधान रहकर अपना काम करती है, तब तक गुस्सा प्रविष्ट हो ही नहीं सकता। लेकिन जब बुद्धि की क्रिया बंद हो जाती है, तब गुस्से का बीच में कूद पड़ना आसान हो जाता है। आपकी इस घटना के संबंध में यही हुआ। ऐसे में बेबी जोर-जोर से रोने लगे तो आश्चर्य कैसा? एक बैंगन तो वैसे ही गया, और वैसे ही जाता, पर अगर बेबी को अपना प्रयोग करने दिया गया होता, तो न हमें बेबी को पीटना पड़ता, न उसका रोना सुनना पड़ता। प्रत्येक अवसर पर व्यग्रता या उतावली किये बगैर हमें यह बात अवश्य देखनी चाहिए कि ऐसे में क्या-कुछ करना उचित रहता है, और वही किया जाना चाहिए।

प्रश्न : ३३

लिली को दूध जरा-सा भी नहीं भाता। चाहे कितना ही समझाइए, नहीं पिएगी। चाय-दूध मिलाकर दें तो कैसा रहे? उसे पी लेती है। पौना कप दूध और चौथाई कप चाय दें तो कोई हर्ज तो नहीं?

उत्तर

लिली को दूध नहीं भाता, इसका एक कारण घर में चाय पीने का अत्यधिक चलन हो सकता है। जब माता-पिता रोजाना उठते ही चाय पीते हैं तो बालक को दूध पिला पाना बहुत कठिन देखने में आता है। ऐसे वक्त में बालक भी बीच-बीच में थोड़ी-सी चाय पीने का प्रयत्न करता है। और पौना कप दूध तथा पाव कप चाय से वह अपना समाधान तलाश लेता है। अगर बालकों को दूध ही पिलाना है तो इसका सर्वोत्तम उपाय यही होगा कि बालकों के हितार्थ माता-पिता भी चाय पीना त्याग दें। खुद चाय पीने वाले और बालकों को दूध पिलाने वाले माता-पिता जब-तब उन्हें यही उपदेश देंगे कि बड़े होकर चाय पीना, अभी नहीं। और कई स्थानों पर देखने में आया है कि छुटपन में जिन्हें चाय बंद थी, या दूध ही पिलाया जाता था, वे बड़े होकर चाय के परम भक्त बन गए। इस सिलसिले में माता-पिताओं को अपने घर का वातावरण सुधारना चाहिए याने वे अपने रहन-सहन को बदलेंगे तो अच्छा रहेगा।

यह बात भी सही है कि सभी बच्चों को दूध नहीं भाता, और यह बात भी ध्यान में रखने की है कि बालकों के पेट में दूध जाना चाहिए। दूध बहुत गुणकारी होता है। बालकों की तो यही मुख्य खुराक है, यह लिखने-बताने की बात नहीं। अत:

हर कोशिश से बालकों के पेट में दूध पहुंचाने का उपाय ढूंढ़ा जाना चाहिए।

अगर चीनी डालने से दूध भाये तो वैसा करें। दूध के साथ गेहूं, जौ या दूसरे किसी अनाज के आटे को मिलाकर राब बनाकर दी जा सकती है। इस प्रकार जिसमें दूध पीने में या खानेमें आए, ऐसे पेय या अन्य व्यंजन बनाये जाएं। पर इतना ध्यान रहे कि पेड़े या ऐसे व्यंजनों के माध्यम से दूध नहीं मिलता। ताजा दूध बालक के पेट में पहुंचे, ऐसी विधियां तलाश की जानी चाहिए।

प्रश्न : ३४

हर शाम बालक की घूमने जाने की इच्छा हो जाती है। शाम पड़ती है और वह तंग करने लगता है। घर का वातावरण ऐसा नहीं है कि उसे घुमाने ले जाएं। इसके पिता को घुमाने ले जाने की फुरसत या उमंग नहीं, और दूसरा कोई ले जाने वाला है नहीं। ऐसे में क्या करना चाहिए?

उत्तर

बालक की इच्छा को हमें पूरा करना ही चाहिए। वह छोटा है और अभी स्वयं अपनी उत्कंठा पूरी कर पाने में अशक्त है, अतः हमें पूरी करनी चाहिए। हम उसकी असमर्थता को और नन्हेंपन को समझेंगे तो ठीक रहेगा, क्योंकि इसी समझ में माता-पिता के दाम्पत्य जीवन की मधुरता, रम्यता और उदात्तता निहित है। बच्चे बड़े हो जाएंगे, तब तो अपने आप घूमने चले ही जाएंगे।

घर के ऐसे वातावरण को हमें बालकों के लिए बदल डालना चाहिए। हम बालकों के लिए पुराने कानूनों के चलन को तोड़ सकते हैं। मनुष्य जाति ने अपने बालकों के हितार्थ

अनेक खतरे झेले हैं। आज भी हमें, और खास तौर पर स्त्रियों को यह लड़ाई लड़ने की जरूरत है। जो स्त्रियां अपने बालकों के हकों के लिए लड़ेंगी वे बालकों और स्त्रियों दोनों को स्वतंत्रता व सुख देंगी। ऐसे माहौल के लिए संघर्ष करने वाली महिलाओं की संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ेगी, त्यों-त्यों उनके द्वारा मानव जाति का उद्धार शीघ्रातिशीघ्र हो पाएगा।

इसके पिता को घुमाने ले जाने की फुरसत या उत्कंठा नहीं है तो उनसे पूछिए, कि उनका कितना समय बेकार व्यतीत होता है? उनसे कहिए कि क्लब में मित्रों के बीच गप्पें मारने में तुम्हारा वक्त बरबाद जाता है। उसे छोड़ दो और बालक को घुमाने ले जाओ। अब तक बालकों, स्त्रियों और घर के प्रति पुरुषों का जो उपेक्षा-भाव है, उसे मिटाने तथा बालकों के जीवन की रक्षा करने, उसे विकसित करने के लिए बहनों को चाहिए कि वे पुरुषों को ठिकाने लाएं। पुरुष अखबार बांचें, मित्रों से गप्पें मारें, साइकिलों पर चक्कर काटें, जहां-तहां घूमने-फिरने चले जाएं और स्त्रियां घर में बैठी-बैठी बालकों को सम्भालें, तो इसमें पुरुषों का पतन है—पुरुष जाति का अपमान तथा विवेक-भ्रष्टता है। अगर बालक उन दोनों के प्रेम का फल है, तो उसके सर्वांग सुन्दर विकास का जिम्मा भी दोनों का है। महिलाओं की सुसंस्कारी सहन शक्ति का अगर पुरुष गैर-जरूरी लाभ लेने लगेंगे, और उन्हीं पर सारा बोझ लाद देंगे, तो आखिरकार स्त्रियों की श्रद्धा, विश्वास, प्रेम खो देंगे और अपने ही हाथों जीवन को नीरस, निष्प्रयोजन और दुखी कर डालेंगे। वर्षों से चली आने वाली स्त्रियों की कमजोर हालत का लाभ लेने वाले पुरुष अगर अपने ही साथी का अकल्याण चाहते हैं, तो उसमें स्वयं उनका भी अकल्याण ही होगा। पुरुषों को पहले ही जाग जाना चाहिए। बालकों के लालन-

पालन और घर की व्यवस्था में उन्हें रुचि लेनी चाहिए, तथा अपनी अर्धांगिनी को सहयोग देना चांहिए।

इसके पिता को बालक को घुमाने ले जाने की उमंग नहीं है तो किस बात की है ? सम्भव है कि दिन भर कमाने में लगा पिता थक-थका कर घर लौटे और आराम करना चाहे, इस वजह से बालक को घुमाने न ले जा सके। पर उसके मन में घुमाने ले जाने की उत्कंठा तो होनी ही चाहिए। माता या पिता को अपने बालकों से बातचीत करने, उनसे खेलने, उन्हें घुमाने ले जाने की उमंग होती ही है, और होनी भी चाहिए। पिता की वह कैसी मनोवृत्ति, कि बालक को घुमाने की उसमें उमंग तक न हो ? पिता अगर अशक्त हो, अपंग हो, रात में भी किसी के यहां काम में जुटा रहे, ऐसे काम में जुटा रहे कि जिसका मूल्य असाधारण हो, तो उस पिता को माफ किया जा सकता है। पर अन्य पिताओं की अनुत्कंठा के लिए उन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता।

प्रश्नकर्त्री से मेरा अनुरोध है कि शाम को बालक को लेकर घूमने निकल जाए। खाना न बनाए। अपने आप सबों की आंखें खुल जाएंगी। बालकों की भलाई के लिए लड़ने वाली माता के हाथ में ही बालक का, उसके पिता का, और संसार का कल्याण है।

प्रश्न : ३५

मेरा एक पुत्र पढ़ने में बिल्कुल ठोठ है। मास्टर लगा रखा है, फिर भी उसकी बौद्धिक-शक्ति बहुत कमजोर है। शरीर इकहरा है, पर मजबूत है। खेलकूद का बहुत शौकीन है और होशियार है। मोहल्ले के लड़कों का अगुआ है। इसी तरह से पढ़ने में भी वह आगे रहे, इसके लिए मुझे क्या करना चाहिए ?

उत्तर

मास्टर लगाने से दिमाग की ताकत कमजोर होती है, अत: मास्टर नहीं रखना चाहिए। बालक के खेलकूद के शौक को आगे अधिक विकसित होने दो। अगुवाई करने के जोश को पढ़ाई की वजह से कमजोर न पड़ने दो। गली में जो क्रिया-शक्ति तथा साहस-शक्ति विकसित होती है वह पुस्तकें पढ़ने से नहीं बढ़ती। पुस्तकें पढ़ने से जो प्रेरणा हम बालक में जगाना चाहते हैं, वह पहले से ही उसमें है। उसे विकसित करने में ही बालक का और आपका भला है। पढ़ाई याने लिखना, पढ़ना और हिसाब करना। इन्हें तो व्यक्ति जब चाहे तभी सीख सकता है। परंतु जिस वय में बालक स्वत: साहस, हिम्मत, चपलता, समय की पाबंदी, आदि गुण आत्मसात करना चाहता है, उस वय में अगर हम उसके लिए बाधक बन जाते हैं तो वह हमेशा-हमेशा के लिए अपंग बन जाता है और बड़ा होने पर चाहे वह कितना ही शिक्षित हो जाए, क्रियाहीन तथा शक्तिहीन ही रह जाता है। ज्यादा पढ़े-लिखे कुछ काम नहीं कर सकते। साहस के हर काम में वे पीछे रहते हैं और इसका कारण है—बचपन में माता-पिता ने या शिक्षक ने उनमें वह शक्ति विकसित नहीं की थी।

प्रश्न : ३६

मेरे लड़के झूठ न बोलें, चोरी-चुगली न करें या दुर्व्यवहार न कर बैठें, इसके लिए मैं उन्हें बारंबार कहती हूं : 'अगर कोई झूठ बोलेगा, चोरी-चुगली करेगा या बुरा बर्ताव करेगा तो भगवान उसे बीमार कर देंगे और फिर उसे कड़वी दवा पीनी पड़ेगी।' क्या मेरा कथन गलत है ? आप भी उक्त स्थिति में मेरे अनुरूप ही व्यवहार करेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। तो क्या इस तरह का भय जताना वाजिब नहीं होगा ?

अगर कभी मेरा कोई लड़का बीमार पड़ता है तो मैं उसे कहती हूं कि 'चोरी-चुगली, झूठ आदि बोलने का ही नतीजा है यह, कि भगवान ने तुम्हें बुखार दिया है।' दवा पिलाते समय मैं उसे कहती हूं : 'बोलो, हे भगवान अब मैं कभी झूठ नहीं बोलूंगा, न चोरी करूंगा। अगर मुझसे ऐसा कुछ हुआ हो तो क्षमा करो और मेरा बुखार मिटा दो।' तो क्या ऐसा प्रयत्न करना वाजिब नहीं होगा ?

उत्तर

झूठ, चोरी-चुगली या दुर्व्यवहार से बचने के लिए आप 'भगवान बुखार चढ़ा देंगे या कड़वी दवा पीनी पड़ेगी' का जो भय बता रही हैं, उससे आप बालक को इन दुर्गुणों से बचा नहीं सकेंगी। मेरा अनुभव भी ऐसा ही है, और वह स्वाभाविक है। भगवान के भय से बच्चे झूठ नहीं बोलते, पर सच भी नहीं बोलते। बच्चे झूठ बोलने का जो दुर्व्यवहार करते हैं वे भगवान के डर से नहीं, हमारे डर से करते हैं। दुख की बात है कि हम स्वयं भगवान बन बैठे हैं। व्यक्ति भय से कभी सत्यनिष्ठ नहीं होता। भय से तमाम गुणों-सद्‌गुणों का नाश हो जाता है। भय भयंकर राक्षस है। जो माता-पिता अपने बालकों को भगवान के या अपने नाम से नहीं डराते, बल्कि निर्भयता का वातावरण देते हैं, वे बालक स्वत: सत्यवादी और ईमानदारी बनाते हैं। 'हे भगवान ! अब मैं कभी चोरी-चुगली नहीं करूंगा, अगर मुझसे कोई गल्ती हो तो क्षमा करो, और मेरा बुखार मिटा दो।' इस तरह जो आप बालकों से कहलवाती हैं, यह बहुत हास्यास्पद और नीति-विरोधी है। इसमें तार्किकता तो है भी नहीं। आपका बालक भी यह जानता है कि भगवान बुखार नहीं देता, वह तो कुछ अधिक खाने से या ऐसे ही किन्हीं कारणों से चढ़ता है, और दवा पीने से वह उतर भी जाता है, यह नहीं कि

भगवान से क्षमा मांगने पर उतरता हो। और फिर बालक जानता है कि वह कई बार झूठ बोलता है, चोरी या चुगली करता है, पर हर बार भगवान उसे बुखार नहीं देते। कहने का मंतव्य यह है कि बालक को बिल्कुल मूर्ख नहीं समझना चाहिए कि इन बातों से वह समझाते ही समझ जाएगा।

आप तो अपने घर का, आसपास का वातावरण निर्दोष रखें, निर्भयता स्थापित करें। बालक से किसी तरह का कोई अपराध भी हो जाए तो उसे सजा मत दो, अपितु उसका कारण ज्ञात करो और उसे प्रेम से इस तरह समझाओ कि दुबारा नुकसान न हो। तभी बालक अच्छा बनेगा। इसमें कत्तई संदेह नहीं।

प्रश्न : ३७

मेरी पुत्री को गणित के अंक याद नहीं रहते, बार-बार भूल जाती है। क्या उसकी स्मरण-शक्ति दुर्बल है ? क्या करना चाहिए ?

उत्तर

जिस बालक के दिमाग में कोई खास कमी नहीं होती, तो सामान्यतया उसकी याददाश्त ठीक ही होती है। याददाश्त का नियम यह है कि हमें जिसमें रुचि होती है, वह याद रहता है, और जिसमें रुचि नहीं होती, उसे भूल जाते हैं। भय अथवा प्रीति दोनों से यह रुचि पैदा होती है। रुचि का कारण है विकास-वृत्ति। भय और प्रीति के कारण जो रुचि पैदा होती है वह तभी तक रहती है जब तक कि भय तथा प्रीति हो। ज्योंही भय पैदा करने वाला या प्रेम देने वाला दूर हटता है, और रुचि समाप्त हो जाती है या क्षीण हो जाती है तो उसी परिमाण में स्मृति भी क्षीण हो जाती है। लेकिन इसके विपरीत जब व्यक्ति

विकास के परिणामस्वरूप स्वयं ज्ञान हासिल करता है तो जब तक विकास उसे स्पर्श करता है, तब तक वह उसे याद रहता है। विकास की गति के बढ़ते ही नया आनंद तथा स्मृति-प्रदेश भी बढ़ते जाते हैं।

आपके बच्चे को गणित की संख्याएँ याद नहीं रहतीं, तो उसे गणित सिखाने का आग्रह अभी मत रखो। दूसरी-दूसरी और जो बातें उसे याद रह सकें, उनके द्वारा उसके विकास की योजना करो या पढ़ाई की व्यवस्था करो। एक नन्हें बालक का विकास अनेक तरह से होता है। अपनी पैनी नजरों से हम उसकी रुचियों का पता लगाएं और फिर ऐसा वातावरण दें, कि जो उसकी रुचियों का पोषण करे। रुचियों के पोषण के साथ ही रुचि संबंधी विषय का ज्ञान बालक आसानी से समझ जाएगा। इस दृष्टि से बालक को देखो और उसे सुविधा प्रदान करो।

प्रश्न : ३८

मेरा भानुशंकर इधर मुझे बहुत तंग करने लगा है। कहता है : 'गिजुभाई ने मुझसे घर में काम करने को कहा है।' और जब मैं घर में साफ-सफाई करने लगती हूं तो झाड़ू मेरे हाथ से छीन लेता है और खुद झाड़ू बुहारने की जिद करने लगता है; बर्तन मांजने बैठती हूं तो राख भरे हाथ लेकर बर्तन मांजने लगता है; रोटी बनाने बैठती हूं तो बेलन हाथ से ले लेता है है और बोलता है : 'मैं बेलता हूं रोटी।' ऐसे-ऐसे औरताना काम करने का बहुत हठ करता है वह, और जब मैं नहीं करने देती तो झगड़ा करता है। अब तो मैं बहुत ही परेशान हो गई हूं। क्या आप कैसे ही करके उसके झगड़े को बन्द कराएंगे।

उत्तर

किसी भी तरह से अगर आप भानुशंकर के लिए घर के कामों में भाग लेने का प्रबंध कर दें, तो उत्तम रहे। अपने शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए भानुशंकर जिस तरह का काम करने को दौड़ता है, उसके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। अगर बालमन्दिर में ऐसे कार्यों की व्यवस्था संभव हो पाती तो हम अवश्य करते। घर में कई तरह के छोटे-छोटे काम करके बालक अपने हाथ-पैरों, आंख-कान आदि इन्द्रियों को विकसित-संस्कारित करते हैं। यही स्वाभाविक विकास है। यह सच है कि बालक के काम करने से हमें अड़चनें आती है, पर अगर बालक के विकास की बात लक्ष्य में रखकर सोचें, कुछ तकलीफें झेलें, तो बालक को रुचिकर काम दिया जा सकता है। हम उनके लिए उनकी रुचि के कामों की अलग से व्यवस्था नही करते, तभी तो वे हमारे कामों में अवरोध बनते हैं।

भानुशंकर घर का औरताना काम करने से बायला बन जाएगा, ऐसा डर मन में न रखना। जिस व्यक्ति को घर का काम-काज करना नहीं आता, वह सही मायने में सुशिक्षित नहीं, अपंग है। पुरुष घर के काम-काज नहीं जानते, तभी तो घर में पराधीनता भोगते हैं। भावी पीढ़ी को सब प्रकार की पराधीनता से मुक्त होना चाहिए। आपका भानुशंकर घर के छोटे-बड़े काम करके अन्य प्रकार के विकास के साथ-साथ स्वाधीनता के मार्ग पर आगे बढ़ेगा।

भानुशंकर जिद नहीं करता, आग्रह करता है। निर्दोष काम करने में जो बल है, वह आग्रह ही है। आग्रह को जिद के नाम से पहचान कर अगर उसे तोड़ देंगे या कुचल देंगे तो भानुशंकर एक कमजोर मनुष्य बनेगा। आग्रह याने प्राण।

भानुशंकर से अगर उसके प्राण छीन लेंगे तो उसमें रहेगा क्या ? उसका आग्रह अगर हमें जिद प्रतीत होता है तो उसका कारण यह है कि उसके आग्रह का समुचित सम्मान देने में हमारा अपना हठ है ।

भानुशंकर अगर आपसे झगड़ता है तो वस्तुत: हमारे हठ के सामने वह अपना विरोध व्यक्त करता है । रोना ही उसका झगड़ना है, और झगड़ना बालक का एक मात्र हथियार है । जब बालक अपना मनचाहा काम कर नहीं पाता, तो उसे रोना ही पड़ता है । वही रास्ता बचता है । अपने विकास के लिए बालक मन में सोचा हुआ काम करना चाहता है, अगर यह बात हम समझ लें, तो उसे रोने का अवसर नहीं देना चाहिए ।

हम लोग जो तमाम काम करते हैं, अगर देवता या राक्षस हमसे उन्हें छीन ले, तो रोने के सिवा हमारे पास और क्या रास्ता रह जाएगा ? इसी से भानुशंकर के झगड़ने का कारण हम सोच सकते हैं । बालकों का पालन-पोषण करना और उनसे तंग होना यह नहीं चलेगा । जब कोई चीज पसन्द नहीं आती तो हमें उससे उकताहट हो जाती है और जब वह अच्छी लगती है तो उकताहट नहीं होती, अपितु आनन्द आता है ।

भानुशंकर के लिए आप एक झाड़ू, एक सूप, मांजने के लिए कुछ बर्तन, पाटा, बेलन आदि का इन्तजाम कर दें और फिर अपने काम में तल्लीन भानुशंकर को देखें । आपको उसके चेहरे पर प्रसन्नता, उत्साह, आग्रह और शांति मिलेगी । अगर जरा उसके दिल में उतरकर उसके आनंद में भाग लेंगी तो भानुशंकर को उठाकर अपनी गोद में लेने की या चूमने की इच्छा हो आएगी । उस वक्त उसके मैले हाथ या मैला किया हुआ कमीज आप दोनों के बीच नहीं आएगा । अगर एक बार भी

आपको ऐसा अनुभव हो जाएगा तो आप उससे तंग नहीं होंगी और भानुशंकर का झगड़ना भी बंद हो जाएगा ।

प्रश्न : ३९

आप बाल-स्वातंत्र्य के पूर्ण हिमायती हैं । समय-समय पर अपने भाषणों में तथा पत्रिकाओं में आप बालकों को आजादी देने के बारे में हमें बताते रहते हैं, परंतु मैं तो अपने मुन्ने से बहुत तंग आ गई हूं । दो महीनों तक आपके कहने के अनुसार मैंने करके देख लिया । किसी भी बात के लिए मैंने मुन्ने को मना नहीं किया, न उसे किसी प्रवृत्ति से रोका, जो-जो उसने कहा वही-वही करती गई । पर ऐसा करने से वह स्वयं विशेष सुखी हुआ हो, ऐसा नहीं लगा । मात्र जो कुछ हुआ है. वह मेरी सहन-शक्ति से बाहर की चीज है ।

एक तो घर की तमाम चीजें जैसे उसी के लिए हैं, ऐसा समझ कर वह उन्हें तोड़ने-फोड़ने लग जाता है । पल भर में वह पिता की टेबिल पर रखे उनके जरूरी कागजों को बिखेर देता है, स्याही से हाथ या टेबिल बिगाड़ देता है; पल भर में रसोईघर में जाकर नमक, मिर्च, हल्दी आदि मिलाकर उनसे रंग बनाता है, तो पल भर में मेरी सीने-पिरोने की वस्तुएं खराब करने लगता है । चाय के प्याले और रकाबियां तो उसने न जाने कितने फोड़े होंगे । प्यालों-रकाबियों को वह धोने के लिए उठाता है, उन्हें भिगोता है और वे हाथ से फिसल कर टूट जाते हैं ।

उसे खिलौने देती हूं पर उनमें उसे मजा नहीं आता । कुछ देर तक तो वह खिलौनों से खेलता है, पर बाद में पटक-पटक कर वही तोड़-फोड़ ! कितने ही अच्छे-अच्छे खिलौने तोड़े होंगे उसने । मेरे घर पर अगर कुछ स्त्रियां और बच्चे मिलने

आते हैं, तो मुन्ने की वजह से बहुत शर्मिन्दा होना पड़ता है मुझे। उसके व्यवहार पर बहुत टीका-टिप्पणी होती है। वह सभ्यतापूर्वक बोल या बैठ नहीं सकता।

ये सब बातें आपको गिनाने लग जाऊं तो पार ही नहीं आएगा। मुन्ने को लेकर अव्यवस्था बहुत बढ़ गई है। घर के लोग उससे बहुत परेशान हैं। कल जब उसने अपने पिता के जरूरी कागजात उठा कर नाव बनाते-बनाते उन्हें फाड़ डाला तो उन्हें बहुत गुस्सा आया और आपके मोंटेसरी वाले सिद्धांतों को ताक पर रखकर उन्हें डंडे का इस्तेमाल करना पड़ा।

मुझे तो वह हर्गिज रास नहीं आया, पर दूसरा कोई रास्ता भी नहीं दिखा। इस व्यवहार में हमसे कुछ गलतियां होना संभव है। आप बालमंदिर में मुन्ने जैसे साठ-साठ बालकों को शांति से रखते हैं, उन्हें पढ़ाते हैं, खेलाते हैं, और हम हैं कि एक बच्चे को भी नहीं संभाल पाते ? आप कोई रास्ता बताएं तो बड़ा उपकार मानूंगी।

उत्तर

आपके प्रश्न जानकर मैं बहुत खुश हूं। अगर बाल-मन्दिर के अन्य माता-पिता भी आपकी ही तरह चिंतनशील बनें और मुझसे प्रश्न पूछते रहें तो निश्चित रूप से इसे मैं अपना अहोभाग्य समझूंगा। साथ ही साथ इसे अपने नए शिक्षा सिद्धांतों और बाल मंदिर की कामयाबी समझूंगा।

मैं यह मानकर लिख रहा हूं कि आपको बुरा नहीं लगेगा कि स्वातंत्र्य के सिद्धांत को आपने अभी अच्छी तरह से नहीं समझा। आपने स्वातंत्र्य का अर्थ सिर्फ यही लिया दिखता है कि 'बालक को किसी भी बात के लिए मना नहीं करना चाहिए, उसे किसी भी काम से रोकना नहीं चाहिए, जो कुछ

वह कहे, करते रहना चाहिए।' जहां स्वातंत्र्य का यह अर्थ लिया जाता है वहां माता-पिता तंग हो जाते हैं और बच्चा भी सुख नहीं पाता, यह स्वाभाविक है। आपका अनुभव बिल्कुल सही है।

अलबत्ता, बालक जो भी काम करे उसमें हमें बाधा नहीं देनी चाहिए, पर हमें उसको 'नकार' से अवश्य बचाना चाहिए। बाधा न डालने और मना न करने की भी मर्यादा होनी चाहिए। बालक को आजादी देने का हमारा प्रयोजन यह है कि वह अपने शरीर, मन तथा आत्मा का पूरी तरह से, निर्बाध विकास कर सके। प्राणि मात्र का नैसर्गिक अधिकार है यह। परंतु मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, और अगर सामाजिक परिवेश की उपेक्षा करके वह विकास करने का प्रयत्न करता है तो स्वयं समाज उसके विकास में बाधा डालता है। ऐसे ही यदि कोई व्यक्ति अपने शरीर को जोखिम में डाल-कर विकास करने का प्रयत्न करता है तो विकास का प्रयोजन ही नष्ट हो जाता है।

मनुष्य के सामने सामाजिक बंधन तो हैं ही, सांसारिक होने के नाते उसके नैतिक तथा धार्मिक बंधन भी हैं। संसार के सभी ग्रंथ कहते हैं कि ये बंधन उत्कर्षकारी होते हैं। इस बात को लोगों ने अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न भी किया है। इस प्रकार बालक की स्वतंत्रता पर ये तीन (सामाजिक, नैतिक, धार्मिक) अंकुश होते हैं।

जो कार्य असामाजिक लगें, वे बालक को नहीं करने देने चाहिए। जैसे, बालक कीचड़ से सने पैर लेकर गलीचे पर बैठने जाए, तो उसे रोकना चाहिए। अगर बालक किसी को कोई काम न करने दे, इतना शोर-शराबा मचाए कि काम

करना मुश्किल हो जाए, तो बालक को रोका जाना चाहिए। इसी प्रकार अगर वह अपने मित्रों के कपड़ों पर स्याही छिड़के, किसी से छीना-झपटी करे, किसी से लड़ाई-झगड़ा या गाली-गलौच करे, तो उसे रोकना ही चाहिए। परंतु अगर बालक दाएं के बजाए बाएं हाथ से खाना खाता हो, अपने पिता का फेंटा माथे पर पहनता हो, अपना मुंह स्याही से रंगता हो, अपनी अंगूठी मित्र को भेंट देता हो, नंगा घूमता हो, अपने खिलौनों को तोड़ता हो या खुद न खाकर कुत्ते को खिलाता हो, तो इनमें बालक को बाधा नहीं देनी चाहिए, क्योंकि इनसे किन्हीं सामाजिक नियमों का उल्लंघन नहीं होता। लेकिन अगर वह इस तरह से खेलता हो कि कुंए में गिर पड़ेगा, तलवार से हाथ काट लेगा, शेर या चीते के मुंह में जा गिरेगा, तो उसे रोकने में कोई हर्ज नहीं है। पर अगर चाकू से साग काटेगा तो लग जाएगी, नंगा घूमेगा तो सर्दी लग जाएगी, जोर से दौड़ेगा तो गिर पड़ेगा, गाड़ी से उतरेगा तो पांव मुड़ जाएगा, ऐसा समझकर अगर हम उसे उसके काम से रोकेंगे, तो हम उसकी आजादी छीन डालेंगे।

इसी तरह अगर कट्टर ईसाई का बालक जीसस के क्रोस को क्षति पहुंचाए, या कट्टर हिन्दू का लड़का मूर्ति को तोड़ कर उसका अपमान करे तो कट्टर माता-पिता लड़कों की ऐसी आजादी को हर्गिज सहन नहीं करेंगे, वे उन्हें वैसा करने से रोकेंगे। किसी व्यक्ति को धार्मिक मामले में कितना कट्टर रहना चाहिए, इस संबंध में यहां विचार करने की आवश्यकता नहीं। यहां पर तो परिस्थिति की वास्तविकता पर ही सोचने की जरूरत है।

अगर बालक की मर्जी के बगैर उससे प्रार्थना करवाएं, या जबरदस्ती उसे मन्दिर में दर्शनों के लिए ले जाएं, उसे नगा

रखने में नैतिकता का उल्लंघन मानें, किसी को अछूत मानकर उसे छूने से इन्कार करें, पीतांबर पहनने पर ही खाने की इजाजत दें, बिना मर्जी उससे प्रातःकाल उठकर माता-पिता को नमस्कार करवाएं या सूर्य को अर्घ्य दिलवाएं, तो बेशक हम उसकी स्वतंत्रता में बाधा देते हैं। इस प्रकार हमें इन तीनों मर्यादाओं को विवेकपूर्वक सहेजकर बाल-स्वातंत्र्य पर विचार करना चाहिए। इन नियमों को ध्यान में रखकर इस संबंध में जैसे-जैसे गहरे पैठते जाएंगे, वैसे-वैसे कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय हम स्वयं ही कर सकेंगे। मैं तो सिर्फ दिशा-निर्देश कर रहा हूं।

अब आपके दूसरे बिंदु पर बात करें। बालक के कहे अनुसार ही अगर हम करते रहेंगे तो हम उसे पूरी तरह परतंत्र बना डालेंगे। बाल-स्वातंत्र्य की मर्यादा में रहकर जो ठीक लगे वह भले ही करें। पर अगर बालक अपना मनपसंद काम हमसे कराता है, और हम उसे पूरा करते हैं, तो जाहिर है हम उसे अपंग बनाकर गुलाम ही बनाएंगे। जिस बालक की जितनी ज्यादा सेवा होती है, वह धीरे-धीरे परतंत्रता में ही अपनी स्वतंत्रता मानकर उसी में सुख और गर्व अनुभव करने लगता है। जिस घर में ज्यादा नौकर-चाकर होते हैं अथवा जो बालक घर में अकेली संतान होता है, वह अधिकांशतः पराधीन बन जाता है। ऐसे में स्वतंत्रता की मर्यादा को लांघकर अगर बालक उच्छृंखल बन जाए तो बेहतर होगा, पर अगर वह पराधीन बनकर निकम्मा बन जाएगा तो ठीक नहीं होगा।

आइन्दा आप अपने पुत्र को उचित कार्य करने की छूट अवश्य दें, पर भूल कर भी प्रेम जताते हुए उसके सभी काम खुद करने न बैठ जाएं। आपका अंधा प्यार अंततः निंदनीय बन

जाएगा। पर हां, इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं, कि बालक को आप कुछ करके ही न दें। जहां-जहां वह स्वयं न कर सके, वहां-वहां उसे बताना चाहिए। उदाहरणार्थ, बालक कोई बारात देखना चाहता है और खिड़की तक वह पहुंचने में असमर्थ है, तो आपको उसकी सहायता करनी चाहिए। ऊंची गाड़ी में बालक को बिठाना हो, तो आप स्वयं उसे बुलाकर बिठाएं। वह कहानी सुनना चाहे तो भले ही आप उसे पढ़कर सुनाएं, पर सुनाएं जरूर। याने बालक जो-जो कार्य करने में अक्षम हो, और उन्हें करने की उसमें उमंग हो, उसे जरूरत हो, तो बेशक आप उसके शौक को पूरा करें। इससे उसमें पराधीनता नहीं आएगी। बालक को वांछित सहायता देने में मेरी जरा भी मना नहीं है, बस हमारी मदद ऐसी हो कि जिसके परिणामस्वरूप बालक स्वतंत्र बन सके, याने हमारी मदद स्वातंत्र्योन्मुखी हो।

यह सब तो हुई सिद्धांत-चर्चा। बात कुछ लंबी भी हो गई। आइए, अब जरा आपकी व्यावहारिक कठिनाइयों पर भी विचार करें।

आपने मुन्ने को जैसी स्वतंत्रता दी है, उसमें मुझे तो कोई दोष नजर नहीं आता। घर की तमाम चीजों को तोड़ना-फोड़ना; या पिता की टेबिल पर स्याही गिरा देना; या नमक, मिर्च, हल्दी आदि को मिलाकर रंग बनाना; या बर्तन मांजने जैसे कामों में से एक भी काम असामाजिक, अनैतिक, अधार्मिक या शरीर के लिए नुकसानप्रद नहीं है। अलबत्ता, इन कार्यों में थोड़ी-बहुत अव्यवस्था और हानि तो है। पर यह सब स्वतंत्र वातावरण में ही संभव है। इन घटनाओं को लेकर मैं मुन्ने के बारे में बहुत-सी बातें कह सकता हूं।

मुन्ने की यह तोड़-फोड़ निरर्थक नहीं है। उसके मूल में

उसकी शोध-वृत्ति या कहें उच्छेद-वृत्ति विद्यमान है। घर की तमाम चीजों को जब हमने मुन्ने की तोड़-फोड़ के लिए खुला रख छोड़ा है तो यह हमारा दोष है। टूटने लायक चीजों को हमें ऊपर ताक में या आलमारी में रखना चाहिए। पर साथ ही हमें बालक की शोधक या उच्छेदक वृत्ति के मूल्य को भी नहीं भूल जाना चाहिए। इस वृत्ति को सही दिशा देना हमारा काम है। और कुछ नहीं तो बच्चों को कागज काटने, लकड़ी फाड़ने या शाक काटने का काम सौंपा जा सकता है।

मुन्ना अपने पिता के कागजों को जो फाड़ता है या स्याही से उन्हें बिगड़ता है, तो वस्तुतः ऐसा करके वह अपने पिता की भूमिका अभिनीत करता है। बस, उसे कागज व स्याही का उपयोग करना नहीं आता, इसीलिए स्याही से कागज व टेबिल गंदे हो जाते हैं। आप मुन्ने को एक छोटी चौकी दे दें, मामूली-सी स्याही की दवात और सरकंडे वाली कलम दे दें। इनसे वह कागज पर लकीरें खींचेगा तो उसके स्नायुओं का अभ्यास होगा।

छोटे बच्चे बहुधा अपने बूते से बाहर का काम करने लगते हैं तो मुश्किल खड़ी हो जाती है। बाल-मन्दिर में जिस बालक को पेंसिल तक पकड़ना नहीं आता, वह कई दफे वाटर-कलर का बक्सा लेकर रंग बिगाड़ने की जिद करता है। निःसंदेह इस प्रकार से बालक रंगों के प्रति अपना आकर्षण व्यक्त करता है। पर यह उपकरण उसकी आयु को देखते हुए आगे का है। इससे उसके सही विकास को पोषण नहीं मिलता। तभी हम ऐसे बच्चों को रंगीन पेंसिलें और कागज देते हैं। बालक तो रंग की अपनी वृत्ति को पूरा करना चाहता है, इसलिए वाटर-कलर के बजाय उसकी वृत्ति रंगीन पेंसिलों में स्थिर हो जाती है।

जिस तरह बालक हमारे सामने अपना हक व्यक्त करता है, उसी तरह से हम भी उसके सामने अपना हक व्यक्त कर सकते हैं। पर अपना हक बालक को समझा पाना कठिन होता है इसीलिए हमें अपनी चीजें सहेज कर रखने की जरूरत पड़ती है या फिर बालक के प्रति उदारता दिखानी पड़ती है।

आपका मुन्ना रसोईघर में जाकर प्रयोग करने लगा है, यह तो किसी चित्रकार या रसायनशास्त्री को शोभा देने जैसी बात है। ऐसे कामों का अभिनंदन किया जाना चाहिए, पर साथ ही अपने रसोईघर को प्रयोगशाला अथवा स्टूडियो नहीं बनने देना चाहिए। बालक की वृत्ति को जान लेने के पश्चात् उसे ऐसी चीजें देनी चाहिए कि जिनसे उसे क्रियाशील रहने का मार्ग मिले। इस तरह आप अपनी रसोई को बचा सकती हैं।

सींने-पिरोने की चीजों के बजाय आप मुन्ने को फ्रॉबेल वाला चटाई गूंथने का बक्सा लाकर दीजिए। देखे, क्या परिणाम आता है।

मुन्ने को कप-रकाबियां धोना पसंद है, यह जानकर मुझे खुशी होती है कि आखिर बाल-मंदिर के खेल घरों तक पहुंच रहे हैं। यह कोई छोटी बात नहीं। पर कप-रकाबियों को कैसे उठाएं, कैसे रखें, कैसे धोएं, कैसे सुखाएं, और धोते समय कपड़ों को किस तरह रखना चाहिए, आदि सब बातें अगर आप उसे एक बार करके बता देंगी, तो वह वैसा ही करेगा। फिर न रकाबियां टूटेंगी, न पहनने के कपड़े गंदे होंगे। फिर भी अगर रकाबी टूटती है तो उस पर भरोसा करके उस काम से रोकें नहीं। रोकेंगे तो फिर बीस बरस तक भी मुन्ना रकाबी धोना और संभाल कर उठाना नहीं सीख पाएगा।

मुन्ने को खिलौने देने में तो सचमुच आपने गलती की है। अब अगर मुन्ना उन्हें कुछ देर अपने पास रखकर तोड़ दे, तो इसमें अचरज कैसा ? वस्तुतः खिलौनों में सीखने को कुछ नहीं होता। उनसे बालक को रचना करने को कुछ भी नहीं मिलता। उल्टे खिलौनों के ढेर से बालक घुटन महसूस करता है। जब बालक को खिलौनों का आवरण निरर्थक लगने लगता है, तब वह उनके भीतर क्या है, यह जानने के लिए उन्हें तोड़ता है, और जब अंदर कुछ नहीं मिलता तो चिढ़कर फेंक देता है। मुन्ना भी यही करता है। इससे मेरी बात की पुष्टि होती है।

आपसे मिलने घर पर कोई आए, तो मुन्ने को लेकर आपको शर्मिन्दा होने की क्या जरूरत है ? वह स्वतंत्रता से खेलता-कूदता है, घूमता-फिरता है या आपकी बातचीत में बाधा डालता है, तो क्या इसी से वह उपद्रवी हो गया ? उसको भी तो बातें करनी है या नहीं ! आप क्षण भर के लिए उसकी बात सुन लीजिए, बस ! आप लोगों को तो बड़े ही निष्क्रिय और समझाए हुए बच्चे चाहिए। आंखें तरेरते ही जो समझ जाएं, ऐसे बच्चे माता-पिता को पसंद आते हैं। याने जो बच्चे भय के संकेत मात्र से दीन-हीन बनकर बैठ जाएं, वहां वही बच्चे अच्छे हैं, ऐसी हम लोगों की मान्यता बन गई है। ऐसे में आपका मुन्ना भी सबों को उपद्रवी लगता है तो क्या आश्चर्य ! पर मैं तो उसे प्राणवंत और क्रियावान कहूंगा। जब दूसरे लोग आपसे मिलने आएं, तब मुन्ना किसी और काम में व्यस्त रहे या आपके कमरे में न आए, चाहें तो ऐसा इन्तजाम आप कर लें, पर मुन्ने की स्वतंत्रता पर अंकुश न लगाएं। मुझे विश्वास है कि आप अंकुश लगाने वालों में नहीं हैं।

हां, आप भी यह सभ्यता-असभ्यता के चक्कर में क्योंकर पड़ गईं ? बच्चा अपने शरीर को आराम देने के लिए जैसे चाहे वैसे बैठे। सामाजिक सभ्यता के बनावटी नियम उसे

एकाएक सिखाने की व्यग्रता न रखें। यह एक ऐसा विषय है कि जो अमुक समय और वय में ही समझ में आता है, अतः इस अज्ञान के कारण न आपको शरमाने की जरूरत है, न मुन्ने को टोकने की और हाथ-धोकर उसके पीछे पड़ने की। सामाजिक-सभ्यता के नाम पर कहीं हम बालक की स्वतंत्रता का अपहरण न कर लें, इसका विशेष ध्यान रखना होगा। यही सोचकर हम लोग अपने बाल-मन्दिर में सामाजिक-सभ्यता को बहुत विवेकपूर्वक, पर धीरे-धीरे दाखिल होने दे रहे हैं।

माता-पिता बालकों से मेहमानों को बार-बार नमस्कार करवाते हैं, उनके साथ बातचीत में 'जी हां', 'जी नहीं' जबरदस्ती बुलवाते हैं, यह मुझे पसंद नहीं। इस ऊपरी सभ्यता को मैं सभ्यता नहीं मानता। वह तो आंतरिक होती है।

मुन्ने को घर में पीटा गया, यह जानकर मुझे बहुत पीड़ा हुई है। कैसा मस्त, चंचल, शोध-वृत्ति का बालक है आपका ! आपको भी बालक की 'पिटाई अच्छी नहीं लगी'—इस कथन में मैं नए शिक्षा-सिद्धांतों की विजय देख रहा हूं। मुझे मुन्ने के पिता की निर्बलता पर तरस आता है। इस टिप्पणी के लिए मुझे क्षमा करें। मारने-पीटने से कितना बड़ा नुकसान होता है, इसे आप भली प्रकार जानती हैं, अतः इस संबंध में मैं कुछ नहीं लिखूंगा। आपसे मेरी मात्र इतनी-सी याचना है कि धीरे-धीरे मुन्ने के पिता का ध्यान सजा की खामियों की तरफ खींचें। जब एक बार सजा का वातावरण बन जाता है तो फिर स्वतंत्रता डरती-कतराती चलती है। अब मुन्ना अपने पिता के सामने पहले जैसी आजादी से खिलेगा या नहीं, इसी की बड़ी चिंता है मुझे। मुन्ने का अपराध कम था। उसने कागज से जहाज बनाया, तो इसमें उसका क्या दोष ? पर कागज काम का था, यह एक आकस्मिक स्थिति थी। इस दुर्घटना से हम

कागज और मुन्ने दोनों को बचा सकते थे। खैर, आइंदे मुन्ने को कुछ रद्दी कागज दे देना ताकि दुबारा उसे पिता के डंडे का स्वाद न चखना पड़े।

अब इस लंबे पत्र को समाप्त करता हूं। आप दोनों मुन्ने के माता-पिता उसके हितैषी हैं, मुश्किलें झेलकर, नुकसान उठाकर बाल-मन्दिर के सिद्धांतों को अमल में लाने का प्रयत्न करते हैं, इसके लिए सच्चे दिल से आपको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। मुझे आशा है कि इतने विस्तृत उत्तर से आपकी कुछेक परेशानियों का समाधान हो पाएगा।

प्रश्न : ४०

हमारा वसंत इन दिनों बहुत समझदार हो गया है। उससे जो कहा जाए, कर देता है। गीत गाना तो उसे बहुत अच्छा आता है। पर जब कोई मेहमान आता है या कोई मिलने आता है, और गीत गाने को कहती हूं तो गाता भी नहीं। दूसरे कामों में भी ऐसे ही करने लगा है। किसी के आने पर तो वह हर्गिज काम नहीं करता। इसका क्या कारण है ?

उत्तर

वसंतराय के पिता को नम्रतापूर्वक चेतावनी देना चाहता हूं कि वसंत को मेहमानों के सामने गाने को न कहें, न मेहमानों को खुश करें। उन लोगों के समक्ष बालक से तरह-तरह के ज्ञान का प्रदर्शन कराना भी नहीं चाहिए। ऐसा करने से बालक उस ज्ञान के प्रति चौकन्ना हो जाता और उसमें अभिमान आ जाता है। उसमें मुकाबले की भावना आ जाती है और एक ऐसी विचारधारा घर कर जाती है कि वह श्रेष्ठ है, दूसरे निम्न हैं। परिणामस्वरूप वह अंतर्मुखी रहने के बजाय बहिर्मुखी बन जाता है। इससे उसका अंतःप्राण मर जाता है। बालक को जो-

कुछ आता-जाता है, उसका आनंद उसके ज्ञान में निहित रहता है दूसरों को बताकर आनंद लेने की जरूरत उसे तब पड़ती है जब उसकी स्वत: आनंद लेने की वृत्ति को बखान कर-करके हम बिगाड़ डालते हैं।

बालक न प्रशंसा चाहते हैं, न निंदा। वे अपनी निंदा-स्तुति स्वत: कर सकते हैं और दोनों में आनंद ले सकते हैं। स्वयं को पहचानना सभी धर्मों का लक्ष्य है। पर स्वाभाविक स्थितियों में सीखने वाले बालकों में स्वयं को पहचानने की क्षमता स्वत: विकसित होने लगती है। उस पर जब हम अपने वातावरण, अच्छे-बुरे की पहचान के अपने विवेक, अपनी पसंद-नापसंद को लादने लग जाते हैं तो बालक आत्मोन्मुखी के बजाय परलक्ष्यी बन जाता है और आत्मज्ञान के मार्ग से दूर चला जाता है। इन सबका कारण यही तो है कि हम बालक से किसी के सामने उसके ज्ञान का प्रदर्शन कराते हैं।

बालक हमारे लिए या मेहमानों के लिए क्यों जिये? अगर सचमुच वसंत समझदार हो, सचमुच उसे गाना आता हो, सचमुच वह आज्ञापालक हो, तो क्या इतने-से संतोष नहीं होता? पर जब हम बालकों के द्वारा अपना अभिमान तृप्त करने लगते हैं, अपनी अपूर्णता को पूर्ण करने लगते हैं, अपने दोषों को ढंकने लगते हैं तो निश्चित रूप से हमें वसंतराय पर चिढ़ पैदा होगी। पर इस तरह वस्तुत: हम अपने आप पर ही चिढ़ते हैं। अगर वसंतराय दूसरी शालाओं में रहकर स्पर्धा, परीक्षा आदि के वातावरण में पला होता तो वह अपने गुणों की दुकान जरूर सजाता और आपको खुश करता। पर आपको वसंतराय में क्या चाहिए? स्वाभाविकता या कृत्रिमता? स्वतंत्रता या परतंत्रता? सत्य या दंभ?

वसंतराय आपका कहना नहीं मानता, इसमें मैं उसकी शिक्षा का दोष नहीं मानता। जहां माता-पिता बालक की वृत्तिगत स्वाभाविकता से बाहर निकलकर उससे आज्ञा पालन कराते हैं वहां उन्हें निराश ही होना पड़ता है। आज्ञा पालक बनना और स्वत्त्व की हानि नहीं होने देना ये दोनों एक चीज नहीं। बालक को आज्ञा पालक बनाने में कहीं हम बालक के तेज को मंद न कर डालें, अनुचित आज्ञाएं दे-देकर बालक में अपनी आज्ञाओं के प्रति अनादर या अश्रद्धा पैदा न कर डालें। अगर और कामों में वसंतराय कहना मानता है, तभी भी क्या हम उसे अनाज्ञाकारी ही कहेंगे?

इतना निवेदन करने पर भी आइंदा अगर आप वसंतराय से गाना गवाएंगे या उसके ज्ञान का प्रदर्शन करेंगे तो वह वसंतराय न रहकर, समझदार और ज्ञानवान न बनकर मूर्ख और नालायक बन जाएगा। यही मेरा अनुभव है। दूसरे बालकों को उनके माता-पिता ने उनका प्रदर्शन कर-करके कैसा बिगाड़ा है, यह मैं ही जानता हूं।

प्रश्न : ४१

कंकु इन दिनों बहुत शैतान हो गई है। बाल मंदिर में पढ़ने भेजी थी तब तो जरा शांत दिखती थी, लेकिन आजकल बहुत चंचल हो गई है। जो भी काम करती है, उसमें पूरा ध्यान नहीं देती। हर काम अधूरा छोड़ देती है। कहना भी नहीं मानती। आपके बताए अनुसार मैंने उसे घर का काम सौंपा है, पर वह तो काम करने से कत्तई मना करती है। जबरन काम कराती हूं तो बिगाड़ देती है। यह कैसे पोसाए? बेटी की जात। कल ससुराल जाना पड़ेगा। बहुत सीख देती हूं, पर सीख लगती ही नहीं। अब मुझे क्या करना चाहिए?

उत्तर

नई शिक्षा पद्धति के समक्ष अगर ऐसी-ऐसी शिकायतें आती रहें, तो पता चले। तभी बाल मंदिर के बालकों को और माता-पिताओं को इसका लाभ मिलेगा।

जब बालक हमारे कहे अनुसार नहीं करता, या ऐसा कुछ करता है कि जो न तो हमें पसंद आता न औरों को, तब हम उन्हें 'शैतान' का खिताब दे देते हैं। इस हिसाब से हम बालकों के कितने ही निर्दोष, स्वाभाविक व आवश्यक कार्यों की निंदा करने लगते हैं। अगर बिस्तर बिछे हैं और बच्चे आकर उन पर लोटने लगें तो हम उन्हें शैतान कह देते हैं। अगर बच्चे रसोईघर में आकर माता की तरह या ऑफिस में जाकर पिता की तरह अभिनय करने लग जाते हैं, तो हम उन पर बड़बड़ाने लगते हैं कि वे शैतान हो गए। अमुक स्थान पर बैठकर खाने की जिद करना, कुत्ते या बिल्ली के बच्चों को नचाना-कुदाना, घर में पानी न हो तब भी गाय को पानी पिलाना—ऐसे अनेकानेक कामों को शैतानी में शुमार किया जाता है। वस्तुतः ये शैतानियां नहीं हैं, अपितु जीवन-विकास के विभिन्न प्रकार हैं, प्रयत्न हैं। इनके लिए शैतानी शब्द का प्रयोग करना ही शैतानी है। बालक की तथाकथित शैतानी के पीछे विकास के लिए छटपटाती उसकी आत्मा को देख सकें तो शैतानी शब्द का या तो नए अर्थ में प्रयोग होगा या फिर वह शब्द ही गलत लगने लगेगा। कंकु को शैतान कहने में उसका अपमान और हमारा अज्ञान छिपा है।

यह बात सच है कि 'कंकु जब बाल-मंदिर में आई थी तब शांत प्रतीत होती थी और अब वह चंचल बन गई है।' यह शिकायत बिल्कुल सही है। घर में जो बच्चे गरीब गाय-से

दिखते हैं वे बाहर 'शैतान' ही कहे जाते हैं, यह जानी-परखी बात है। शुरू-शुरू में अत्यंत शांत प्रतीत होने वाले बच्चे आगे चलकर मस्तीखोर बन जाते हैं। बाल-मंदिर के सामने ऐसे अनेक अनुभव हैं। दबाव बहुधा मिथ्या शांति पैदा करता है। यह शांति अगर बहुत गहरे तक चली जाती है तो बच्चा बिल्कुल नामर्द बन जाता है। जिस बालक को लोग विनीत, भला, गौरवशाली आदि शब्दों से पुकारते हैं, वही आगे चलकर इन्हीं गुणों के कारण दुनिया में अयोग्य और कायर कहलता है। यह एक सामान्य अनुभव है। भय के कारण बच्चे कायर तथा शक्तिहीन बन जाएं, इससे पहले अगर उन्हें स्वतंत्रता का स्पर्श हो जाए तो वे किसी भी दबाव के सामने सख्ती से संघर्ष कर सकते हैं, क्योंकि वे खामोश नहीं बैठ सकते। उस समय वे अस्थिर, उद्धत या शैतान आदि नामों से विभूषित किये जाते हैं। घर में बालकों को खूब दबा कर रखा जाता है, तो वहां वे शांत रहते हैं, पर ज्योंही बाल-मंदिर के स्वतंत्र वातावरण में आए नहीं कि एक बार तो हद से बाहर निकल जाने के प्रमाण मौजूद हैं। कंकु बाल-मंदिर की हवा लगने से ही चंचल बनी है, निःसंदेह यह सच है, पर इसमें घबराने की क्या जरूरत! माता-पिता को अब उसे दबाकर शांत करने की बजाय उसकी चंचलता को संयमित करना चाहिए। सच्ची स्वतंत्रता के द्वारा संयम कैसे प्राप्त किया जाए, इसके लिए बाल-मंदिर से सबक लेने की जरूरत है।

कंकु से जबरदस्ती काम कराया जाएगा तो बिगड़ेगा ही। यह सच है और ऐसा होना भी चाहिए। जब बच्चे अपनी पसंद से काम करते हैं तो अच्छा ही करते हैं। हमारा सौंपा काम उन्हें पसंद आना ही चाहिए, यह सोचना गलत होगा। बालक अपनी शक्ति को विकसित करने के लिए काम करता है और

हम अपनी अशक्ति की वजह से उसे काम सौंपते हैं। बालकों से जबरदस्ती काम कराने का अवसर ही न आए, यह बात माता-पिता को उन्हें काम सौंपने से पहले ही सोच लेनी चाहिए। कुछ काम ऐसे होते हैं कि बालकों को अपनी उम्र या अशक्ति के कारण वे पसंद नहीं आते; और कई कामों के साथ पहले से ही उनके अप्रिय अनुभव इस तरह से जुड़े होते हैं कि वह काम सौंपा नहीं, कि बालक नाराज हुए नहीं। कई बार बालक की व्यस्तता और मन:स्थिति की प्रबलता भी कारणभूत होती है। कई बार अपरिचित व्यक्ति की उपस्थिति या बालक का आलस्य भी बाधक बन जाता है। हुक्म देने से पहले इन बातों पर ध्यान देना जरूरी है। हां, अगर बालक कभी कोई काम न करे, तो प्रश्न गंभीर है। पर अगर वह कभी करे और कभी न करे तो उक्त कारण में से कोई वजह हो सकती है। कंकु भी कभी मना करे तो उक्त तमाम दृष्टिकोण से सोचा जाना चाहिए।

कंकु अगर बेटी की जात है तो इसमें उसका क्या गुनाह? पर उसे कम उम्र में ससुराल जाना पड़ेगा, तो यह हमारा दोष होगा। बच्ची अभी जन्मी है, बड़ी हो रही है, और उसे ससुराल भेजना चाहें, तो हम सब अधम लोग हैं। ससुराल हो आएगी तो क्या हो जाएगा? सभी बालकों की माताएं हमारे यहां हैं ना, जो नन्हें बालकों के कामकाज में बालक बन कर आनंद लेती हैं, पेड़ों पर चढ़ने में रुचि लेती है, और बाल-मंदिर के वातावरण में यूं उछलती-कूदती हैं, जैसे नए पंख मिले हों उन्हें! मुझे लगता है कि उन बालाओं का खून हुआ है। बच्चे शरीर या तन से बढ़ते हैं तो क्या मन से भी बढ़ते हैं? अगर शरीर तथा उम्र के साथ-साथ मानसिक विकास न हो तो साठ वर्ष की बुढ़िया भी बच्ची ही बनी रहेगी। जीवन विवाह के लिए नहीं है, विवाह जीवन के लिए है। जीवन की तैयारी किए बिना कंकु शादी करके भी क्या करेगी? और जीवन की तैयारी क्या 'ऑर्डर' से तैयार होने वाली या बाजार से खरीदी जाने वाली चीज है?

कंकु पहले मनुष्य है, फिर बेटी। जीवन पहले है, विवाह बाद में। इस दृष्टि से उसकी पढ़ाई की चिंता पहले की जानी चाहिए। जितनी निश्चिंत आप इसकी उम्र के भाई से रहती हैं, उतनी ही निश्चितता कंकु को लेकर भी रखें। हम लोग कंकु को मनुष्य बनने की शिक्षा देने का प्रयास कर रहे हैं। अगर वह मनुष्य बन जाएगी तो ससुराल में क्या करेगी, इस बात की चिंता किसी को नहीं रहेगी।

प्रश्न : ४२

हमारी अंजु बाल-मंदिर में बहुत समय से आ रही है, पर न तो उसे एक की गिनती आई, न कक्का लिखना आया। क्या कारण है इसका? दिन भर में वह फकत एक ही काम करती है। कोयले या खपरैल के टुकड़े को लेकर दीवार, चबूतरे या दालान में जहां-तहां लकीरें खींचती रहती है। उस समय तो वह खाना तक भूल जाती है। किसी काम के लिए उस वक्त बुलाएं तो जैसे सुनती तक नहीं। कई बार तो कोयले से वह अपने हाथ, पैर, मुंह आदि भी बिगाड़ लेती है और दीवारों को काला ही काला कर डालती है। उस समय मुझे बहुत गुस्सा चढ़ आता है और आपकी मनाही के बावजूद चपत लग जाती है। आपके बाल-मन्दिर में क्या यही सिखाया जाता है? अब आप इसे किसी रास्ते पर लाओ तो बेहतर रहे!

उत्तर

जिन माता-पिताओं को बाल-मंदिर की शिक्षा पद्धति की

जानकारी नहीं है, उन सबों का अनुभव लगभग ऐसा ही है। अगर वे बार-बार बाल-मंदिर में आएंगे, पढ़ाई के काम को देखेंगे, शिक्षकों के साथ शिक्षण-पद्धति तथा बाल-विकास के बारे में बातचीत करेंगे तो उन्हें ऐसे पत्र लिखने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

बाल-मंदिर की पद्धति नई है, पर जादुई नहीं है। वह बालक के स्वाभाविक विकास की योजना बनाती है, पर बालक को अमुक-अमुक बातें सिखा देने की जिम्मेदारी नहीं लेती। प्रचलित शाला और वर्तमान समाज का उद्देश्य यह है कि जैसे-तैसे बालक को फटाफट अक्षर एवं अंक ज्ञान करा दिया जाए। इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए दंड, पुरस्कार, रटंत आदि अनुचित साधनों का खुलकर इस्तेमाल किया जाता है। परिणामस्वरूप बालक जो कुछ सीखते हैं, तोते की तरह पढ़ने-बोलने लगते हैं। जबकि बाल-मंदिर का उद्देश्य बालक का विकास करना है। दंड आदि उत्तेजकों का इसमें बहिष्कार है। अतः प्रत्येक माता-पिता को पता होना चाहिए कि बाल-मंदिर फटाफट गिनती या वर्णमाला नहीं सिखा सकता। बाल-मंदिर को अंकज्ञान या अक्षरज्ञान का मोह नहीं, फिर भी इनका ज्ञान बहुत अच्छी तरह से बालकों को हो जाता है। बाल-विकास में महत्त्वपूर्ण तत्त्व है इन्द्रियों का शिक्षण। सच्चे इन्द्रिय-शिक्षण पर ही बालक की जीवन भर की शिक्षा निर्भर रहती है। बाल-मंदिर इस बुनियादी तत्त्व पर अधिक बल देता है। जब बालकों का इन्द्रिय-विकास उत्तम तरीके से हो जाता है, तो वे किसी भी विषय में आसानी से प्रवेश कर सकते हैं। आगे चलकर इन्द्रिय-विकास के कारण ही उन्हें अक्षर व अंक ज्ञान सहजता से हो जाता है। इसके अनेक उदाहरण दे सकता हूं मैं।

अंजु दीवार पर जो लकीरें खींचती है, उसके पीछे बाल-

मंदिर का शिक्षण विद्यमान है। अंजु बाल-मंदिर में कागज-पेंसिल पर रेखागणित की रेखाएं खींचा करती है। इस काम के द्वारा वह अक्षर लिखने की तैयारी करती है, तथा चित्रों के लिए रंग-संयोजन और आकार बनाने की क्षमता अर्जित कर रही है। उसके पास घर में बाल-मंदिर वाले उपकरण नहीं है, इसलिए कागज-पेंसिल के बजाय कोयले से या खपरैल के टुकड़े से दीवार या बरामदे को उसने आसान उपकरण बना लिया है। माता-पिता को चाहिए कि अंजु के लिए कुछ कागज-पेंसिल ला दें। यह संभव न हो तो तख्ती और चाक दे दीजिए, अन्यथा दीवारें या दालान बिगड़ते हैं तो कुछ बुरा नहीं। हाथों के शिक्षण के लिए बाल-मंदिर ने अंजु में जो चेतना जगाई है उसे रोका गया तो नुकसान होगा। दीवारें बिगड़ें या हाथ-मुंह काले हो जाएं यह महत्त्वपूर्ण बात नहीं, महत्त्वपूर्ण है अंजु की उत्साह एवं एकाग्रता की शिक्षा। अगर हाथ-मुंह साफ-सुथरे रखने के लिए अंजु के आंतरिक उत्साह को रोका जाएगा तो उसके विकास में जबरदस्त झटका लगेगा।

अंजु लकीरें खींचने लग गई है अतः अब थोड़े ही अर्से में अक्षर सीखने लगेगी। यह बाल-मंदिर का क्रम है। आशा है माता-पिता धीरज रखेंगे।

प्रश्न : ४३

इस देश में भूत-प्रेत आदि का बहम जड़ जमाकर बैठा है। इन्हें लेकर बचपन का स्थाई बना मेरा भय बड़ा ही त्रासदायी है। इन भ्रांतियों को दूर करने के बजाय बालकों को जो पुस्तकें दी जा रही हैं, उनमें प्रायः ऐसी ही बातें देखने को मिलती हैं। कई बार कहानियां भी भयानक-रस की कहने में आती हैं। क्या यह उचित है? ऐसी कहानियों के बजाय क्या वैज्ञा-

निक कथाएं न कही जाएं ? भावी पीढ़ी को अगर हमें निडर बनाना है तो क्या इस दिशा में शुरू से ही वांछित मार्गदर्शन देने की जरूरत नहीं है ?

उत्तर

मैं आपके इस विचार से पूरी तरह सहमत हूं कि हमारे देश के बालकों में भूत-प्रेत आदि का भय पैदा करने वाला साहित्य उनके हाथों में नहीं दिया जाना चाहिए। अगर ऐसी भ्रांति में विश्वास पैदा करने जैसी कोई पुस्तक हो तो उसे अपने घर में नहीं लाना चाहिए, और किसी पुस्तकालय में हो तो वहां से निकलवा देनी चाहिए। अगर हमारा वश चले तो लेखकों-प्रकाशकों से भी विनती करके ऐसे साहित्य के प्रकाशन को रोकना चाहिए। भूत-प्रेत को मानना और उनसे भयभीत होना हम लोगों का बुनियादी रोग है—भयंकर रोग। इस वक्त यह असाध्य रोग है। इसके कारण बड़े-बड़े शूरवीर भी दीन-हीन बन जाते हैं। उनका पसीना छूटने लगता है। जिस तरह आपका भयभीत होने का अनुभव है, वैसा ही मेरा है। मैं भी आपकी ही तरह बचपन में अंधेरे में पड़े अपने पिता के जूतों से डर गया था, और पसीने-पसीने हो गया था। भय के ऐसे बहुत सारे उदाहरण दे सकता हूं मैं। बड़े-बड़े विद्वान तक डरते हैं। बड़े-बड़े सिपाही भी भूत-प्रेत डाकिनी के सामने डर के मारे चीखने लग जाते हैं। अतः यह बात सही है कि नई पीढ़ी अगर इस भय से बच सके तो इसके लिए हमें प्रचुर प्रयास करने चाहिए।

इस दिशा में पहला प्रयास तो यह है कि हम जो डरने वाले लोग हैं, डरना बंद कर दें। जब तक हमारे अपने भीतर डर है, वहम है, तब तक भले ही हम बोलें या न बोलें, घर में भय का वातावरण पैदा हो जाएगा। हर सदाशयी माता-पिता को यह बात ध्यान में रखने की है।

दूसरे, घर में भय उत्पन्न करने जैसी बातें हमें बंद कर देनी चाहिए। अगर कोई ऐसी बातें करे तो उसे मना कर दें। डराने वाली बातें हम लोग इसलिए करते हैं—कि ऐसा करके या तो फिर से हम निर्भयपूर्वक डरने का मजा लेना चाहते हैं, या हम अपने भीतर पैठे हुए भय को निकालने का प्रयत्न करते हैं। ऐसी बातें करते समय हम मूल बात भूल जाते हैं। घर में तमाम नौकरों-चाकरों, सगे-संबंधियों आदि को स्पष्ट कर देना चाहिए कि आपके घर में ऐसी डराने वाली बातें हर्गिज न की जाएं।

पर हमें इतना कठोर नहीं बनना चाहिए कि ऐसी बातें न कोई बोले, न कोई लिखे। जैसा मैंने ऊपर लिखा है यह अपने भीतर के भय को बाहर निकालने का साधन है। निर्भयता पैदा करने के लिए भयानक कहानियों और बातों के ठेठ तल का अता-पता कर लेने, उसके मिथ्यापन को जानने की जरूरत है। जिस तरह कांटा कांटे से निकलता है, उसी तरह बड़े लोग भी भय-प्रद प्रसंग से भय को दूर कर सकते हैं। आप भय का विरोध करते हैं और मैं पक्ष लेता हूं। वस्तुतः दोनों बातें तत्वतः एक ही हैं। हम दोनों भय को निकालने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हमें सिर्फ इतना ही देखने की जरूरत है कि अपने लिए सुख-सुविधा की तलाश में कहीं बालकों के लिए हम परेशानियां पैदा न कर दें। इसीलिए मैंने एक बार कहा था कि जो बालक भयानक रस को पचा सकते हैं, उन्हीं के सामने भयानक बातें कहनी चाहिए।

दूसरी बात। अगर भयप्रद बात हो तो उससे डरने की जरूरत नहीं है। शूर-वीरता की भावना को प्रेरित करने के

लिए, अथवा भय से मुक्त करने के लिए भयप्रद बातों का सहारा लिया जा सकता है। देखने की बात इतनी ही है कि भयानक बातों और कहानियों के पात्र भयदायी परिस्थिति में भय के प्रति कैसी मनोदशा या व्यवहार जताते हैं। जिन कहानियों से ऐसी बातें ध्वनित होती हों कि भय अंततः मिथ्या है, प्रेत-प्रेतनी आदि सब बकवास है, पत्थरों से भी कोई डरने की बात है, तो ऐसी कहानियां बड़ी उपयोगी होती हैं। इन्हें शिक्षण के साधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

भूत-प्रेत को लेकर अगर हम मौन रहेंगे तो यह नहीं पोसाएगा। हमारे वातावरण में परंपरा से दाय रूप में हमारे खून में सभी का भय समाया हुआ है। मौन रखने से या फिर बाद में ऊपर से लेपन करने से याने दूसरी, तीसरी कोई कहानी कहने से पहले वाली का असर कम नहीं होगा। अगर हम भय का उच्छेदन करना चाहते हैं तो उसे जगाकर सामना करके उसके विरुद्ध लड़ने की जरूरत है। और उसमें उसे हराना चाहिए, उसका मिथ्यापन सामने लाकर उसका उपहास करना चाहिए। इसीलिए इन कहानियों की उपयोगिता है।

कहानी कहने वाले व्यक्ति को कहने में ध्यान देना चाहिए। कोई भी कहानी ऐसी नहीं होती कि जो अच्छाई-बुराई का मिश्रण न हो। बुराई को प्रकट करने के लिए ही अच्छाई को और सिर्फ अच्छाई को अंत में विजय मिलती है, यह बताने के लिए बुराई का मिश्रण आवश्यक है। और फिर डरपोक या बहमी पात्रों के बिना शूरवीर को बहमहीन कैसे बताया जाए? हास्यास्पद क्या है यह बताए बिना उसकी निंदा कैसे हो सकती है? अगर कोई कहानी कहने वाला भयानक रस की कहानी सुनाते समय यह बता सके कि अब तक लोगों की कैसी मान्यताएं थी, और वह कितनी बड़ी गलती थी उनकी, तो वह बहुत उपयोगी होगा।

लेकिन कोमल प्रकृति के बालकों को, जो हमारे आशय को समझ नहीं सकते, पर जो भयप्रद कहानी से डरने लग जाते हैं, उन्हें ऐसी कहानियां नहीं सुनानी चाहिए, हर्गिज नहीं।

विज्ञान की या हमारे आसपास की जीवंत दुनिया की कहानियां कहने से इंसान के मन में उतरा भय या बहम दूर नहीं होता। वैज्ञानिक भी डर सकता है। विज्ञान विषय में उसकी बुद्धि निर्मल हो सकती है। उसके बाहर लोक मन आ सकता है। इसके अनेक दृष्टांत आंखों के सामने आते हैं।

और फिर व्यक्ति को डरना भी चाहिए। सिर्फ निडरता की बातें करते रहना स्वाभाविक सृष्टि से दूर की बात है। यह भी अपने आप में एक तरंग है, भ्रमणा है। भूत से भले ही हम न डरें पर खुलकर आतंक मचाते हाथी से डरना चाहिए; अंधेरे से व्यक्ति न भी डरे पर अंधेरे में सांप या बिच्छू के काटने की संभावना रहती है, यह बात स्वीकार करनी चाहिए। अतः इनसे डर कर ही चलना चाहिए। भय कुदरत के द्वारा प्रदत्त एक वरदान है। समय रहते जो भय को स्वीकार कर लेते हैं और उससे स्वयं को बचा लेते हैं, वे बच जाते हैं। भय को महत्ता दिये बिना बहादुर नहीं, पागल चलता है। सच्चे भय और गलत भय के बीच फर्क करना हमें सीखना-सिखाना चाहिए। भूत से न डरें पर मारने वाली गाय से हमें डरना चाहिए। अगर इस अर्थ में कोई बालक न डरता हो, तो उसे डरना, चौकन्ना रहना, सावधान रहना, ध्यान रखकर दूर रहना सिखाया जाना चाहिए।

प्रश्न : ४४

मेरे बच्चों की पढ़ाई को लेकर मेरे सामने बड़ी परेशानी है। मैं देशसेवा के कार्यों में लगा हूं और इसीलिए ज्यादातर

बाहर रहता हूं, अत: बच्चों के पालन का काम मेरी पत्नी के जिम्मे है। वह ठहरी नितांत अनपढ़ और नए विचारों के बारे में कुछ जानती-करती नहीं। इसी कारण बाल-विकास के बाबत हममें मत-विरोध है। ऐसे में मुझे क्या करना चाहिए ?

उत्तर

बाल-शिक्षा के प्रति आपका उत्साह स्तुत्य है। पिता के रूप में आपकी चिंता और प्रवृत्ति दोनों बहुत कम लोगों में आजकल देखने को मिलती है। आजकल बच्चे अनपढ़ अज्ञानी माताओं के हाथों पड़कर कितने कष्ट उठा रहे हैं, इसे आप अच्छी तरह अनुभव कर सकते हैं। अगर प्रत्येक पिता इस तकलीफ को अनुभव कर ले तो बालकों के उद्धार हेतु भविष्य में हमें जो संघर्ष करना है, उसका समय और करीब आ सकेगा।

सचमुच आपके समक्ष धर्म-संकट है। देश सेवा और बाल-शिक्षण इन दोनों में से आपने देश सेवा को चुनकर अपना देश-प्रेम दर्शाया है, लेकिन बालकों के प्रति आपका कुदरती प्रेम आपके देश-प्रेम की बार-बार परीक्षा लेता है। ऐसी ही परीक्षाओं से व्यक्ति उन्नति करता है, और आप भी धीमे-धीमे ऊपर चढ़ेंगे ऐसा प्रतीत होता है। आपको परेशानियां कैसे कम हों, इस संबंध में मेरे विचार इस प्रकार हैं।

आप एकदम ऐसा न मान बैठें कि अनपढ़ स्त्री बाल-पोषण के बारे में कुछ नहीं जानती। स्त्री में कुदरत ने मातृ-प्रेम दिया है। इस प्रेम से अधिकांश बालक विकास करके बड़े होते हैं। इस प्रेम की सुरक्षा की जानी चाहिए। शिक्षण की व्यवस्था अगर हम अपने हाथ में ले लें, तब भी इसी प्रेम को माध्यम बनाना होगा। इस प्रेम को अलबत्ता अधिक अच्छा, अधिक बलवान, अधिक व्यापक बनाने में हम स्त्री की सहायता कर सकते हैं।

आज स्त्रियां बालकों को पीटती हैं, हमारे नए शैक्षिक विचारों का विरोध करती दिखती हैं। इसके अनेक कारणों में से एक कारण यह है कि उनके समक्ष कोई और आदर्श नहीं है; उन्होंने इसके अलावा कुछ और जाना-देखा नहीं है। पूरा समाज मानो उन्हें मदद देता प्रतीत होता है। हम नए विचारक उसे समझते नहीं, उनके लिए जो स्वाभाविक है उसका हम विरोध करते हैं, परिणामस्वरूप उनके-हमारे बीच विसंवाद पैदा हो जाता है।

आपकी अपनी स्थिति विशिष्ट है। आप बाहर रहते हैं और बच्चे के लालन-पालन का काम पत्नी के भरोसे छोड़कर चले जाते हैं, और बच्चों के समुचित विकास का दायित्व उसके जिम्मे डालकर, उसकी त्रुटियों से असंतोष व्यक्त करते हैं। सच पूछो तो आपको बाहर नहीं जाना चाहिए। बाल विकास का दायित्व माता-पिता दोनों के जिम्मे समान रूप से है। अगर पत्नी को बाहर का काम इतना महत्त्वपूर्ण लगे, कि वह हमें मुक्त कर दे और बालक के प्रेमपूर्ण लालन-पालन का सारा काम आग्रहपूर्वक स्वयं उठा ले, तभी हम मुक्त हो सकते हैं। लेकिन जब पत्नी हमारी प्रवृत्ति की विरोधी हो तब आमने-सामने की खींचातान में बालक को बहुत सहना पड़ता है।

आपकी पत्नी आपको चाहती हो तो इसका आप यह लाभ तो नहीं ले सकते कि 'लो, तुम बच्चे का विकास करो और मैं अन्य कामों में लगता हूं।' मेरा अपना अनुभव है कि स्त्रियों के माथे बाल-विकास का काम लाद देने से वे चिढ़ जाती हैं। वस्तुत: वे किसी अन्य कारण से चिढ़ती हैं और दुखी होती हैं और इस तरह हमें भी बहुत व्यथित बनाती हैं। वह कारण यह है कि हम उन्हें स्वाभाविक गृहस्थाश्रम धर्म का लाभ प्रदान करने से अलग हट रहे हैं। जितनी कमियां और उपेक्षा हमारे गृहस्था-

श्रम धर्म में होंगी उतनी ही अव्यवस्था और उपेक्षा हमारे घर में, बालकों के लालन-पालन में और स्वयं स्त्री में आ जाएगी। स्त्रियां गृह-जीवन की शांति, सुख, प्रेम आदि चाहती हैं। अगर ये तत्त्व उन्हें मिल जाएं तो वे बिना किसी विरोध के बाल-विकास का काम संभाल लेती हैं। पर अगर हम उनसे कहें कि 'हम तुम्हें चाहते हैं। यह काम तुम करो, और इसके लिए तुम अपने आपको योग्य बनाओ' तो अगर वे विरोध न करेंगी तो संतुष्ट भी नहीं होंगी। अतः पुरुषों को इस प्रवृत्ति का ऐसा प्रबंध करना चाहिए कि स्त्री मानकर चले कि गृह जीवन के लिए यह प्रवृत्ति अनिवार्य है और यही गृह-सुधार का आधार है। जब हमारी प्रवृत्ति में स्त्री को विश्वास नहीं होता, तो वह जबरदस्त मुश्किलें पैदा कर देती है।

पर अगर हमारी प्रवृत्ति इतनी कीमती लगे कि जिसमें भले ही हम स्त्री तथा बालकों को होम दें और इसके लिए बाद में मन में पछतावा न रहे, तो जरूर हम अपनी मनचाही प्रवृत्ति में लग जाएं, और उस मूल्यवान व्यापक सेवा की प्रवृत्ति में अपने गृह जीवन का यज्ञ करें। तब बाल-विकास के ऐसे ख्यालों को छोड़ देना चाहिए। इसीलिए मैंने ऊपर लिखा था कि इस वक्त आप परीक्षा के दौर से गुजर रहे हैं। या तो आप सेवा कार्य कीजिए, या फिर अच्छी तरह से गृहस्थाश्रम धर्म को संभालिए।

अगर आज स्त्री लोकलाज या प्रचलित हवा के कारण हमारे विरोध में खड़ी न हो, तो कल जरूर खड़ी होगी। जब तक हम उसकी वाजबी इच्छाएं दबाकर चलेंगे, तब तक दबाव के हटते ही एक आवेग के उमड़ने की संभावना मानकर ही चलना चाहिए। इसीलिए आज जब हमारा जोर चल रहा है तब, और हमारा प्रेम उस पर अधिकार किये हुए है तब, उस

पर किसी भी तरह का दबाव नहीं डालना चाहिए। दबाव से काम करेंगे तो बिगड़ जाएगा, यही नहीं, चंद दिनों में स्त्री तुम्हारे काम की और स्वयं तुम्हारी दुश्मन बन जाएगी।

प्रेमिल पत्नी के साथ अपनी जिद रखने का प्रयोग आपने करके देख लिया। आप उसमें सफल नहीं रहे, न ही रहोगे। अज्ञानी स्त्री के लिए सत्य के प्रति आग्रह रखना सिर्फ दबाव और आक्रमण जैसा ही होता है। उसे लगता है कि जैसे जुल्म किये जा रहे हैं। वह हमें बदला हुआ महसूस करने लगती है। हमारे प्रति उसका आंतरिक हुलास क्षीण होने लगता है। वह चक्कर में पड़ जाती है। वह तय नहीं कर पाती कि आपका वह भाव उसे दबा रहा है और वह आपको कह भी नहीं पाती। प्रेमी पत्नी पर अपनी जिद को, अपने आग्रहों को आरोपित करने के बजाय प्रेम प्रकट करना चाहिए। प्रेम में पत्नी अधिक समर्पित हो जाती है। इसलिए प्रेम ही अधिक व्यक्त करना चाहिए। मात्र यही कहते रहें कि 'तुमसे प्रेम है, प्रेम है' और उसका पोषण न करें तो प्रेम सूख जाता है। प्रेम का अर्थ क्या है? विशेष रूप से स्त्री-पुरुषों के बीच प्रेम का क्या अर्थ है? यह बात आजकल के नए लोग भली-भांति नहीं जानते। उनका प्रेमानुभाव तो गालो होता है। प्रेम के नाम पर वे मात्र विषयों का भोग करते हैं, या फिर हवाई खयालों में विचरण करते हैं। जबकि दुनिया वास्तविकता है और प्रेम इस वास्तविकता में अपना स्थान मांगता है। प्रेम स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों से जुड़ा रहता है। जिस तरह से शरीर और आत्मा से जुड़े रहकर जीवन आगे बढ़ता है, वैसे ही प्रेम आगे बढ़ना चाहता है। प्रेम न आग्रही है, न निराग्रही। उसका स्वयं का बल है, जो बहुत प्रखर है। उसके द्वारा हम अपना दर्द औरों को कह सकते हैं। आपकी पत्नी आपके बालकों का तभी उत्तम रीति से लालन-

पालन करेगी, जब उसे अपने पर आपका प्रेम बरसता हुआ प्रतीत होगा, याने जब वह आपके प्रेम को अनुभव करेगी। क्या आपकी पत्नी को आपका ऐसा प्रेम मिला है ?

यह बात सही है कि पत्नी जिस गलत ढंग से बालक को संभालती है उससे हमारा विरोध है। पर वह मात्र विरोध है, क्रोध नहीं। विरोध का मतलब यह नहीं कि दिन भर हम 'तुझे कोई अता-पता नहीं, तुझे कुछ नहीं आता-जाता' कहें, यह गलत है। विरोघ का यह मतलब भी नहीं कि अनादर और उपेक्षा की वृत्ति अपना लें। विरोघ को बाहर व्यक्त करने के बजाय हमें अंदर अंतःकरण में व्यक्त करना चाहिए। अगर हालात को बदलने के लिए किसी से लड़ेंगे झगड़ेंगे, तो जाहिर है दुखी ही होंगे। मौन अंदर के दुख को तीव्रता से अनुभव कराता है। पर ऊपर से प्रसन्न रहना चाहिए, बालकों को हमेशा खुश रखना चाहिए, वातावरण को प्रेम से भरने का श्रम करना चाहिए, भले ही भीतर का अंतःकरण दुखी होता हो। पत्नी को प्रेम से भिगोना चाहिए तथा उसके प्रति कोमलता रखनी चाहिए। साथ ही साथ ईश्वर से भी प्रार्थना करते रहना चाहिए। बालक के कल्याण की बात सोच कर पति को पत्नी के अधिक समीप जाना चाहिए। और जब बाहर के तमाम साधारण उपायों को आजमाने पर रास्ता न मिले, तो ईश्वर का स्मरण करके नम्रतापूर्वक समाधान के मार्ग की याचना करनी चाहिए। अगर बालकों के प्रति हमारा प्रेम निर्मल होगा, तो ईश्वर समाधान का रास्ता निकालेगा।

प्रश्न : ४५

बच्चा बहुत ज़िद्दी है। गोद में न उठाएं तो रोता है। तब तक चुप नहीं रहता जब तक उसे गोद में न उठा लें। बल्कि

रास्ते में चलते-चलते उठाना पड़ता है। जिस बात की जिद कर लेता है, उसे छोड़ता तक नहीं; तब तक रोता रहता है जब तक जिद पूरी न हो जाए। ऐसे में मुझे क्या करना चाहिए ?

उत्तर

मेरी मान्यता है कि हम ही बच्चों को ऐसा बनाते हैं—गोदी-प्रिय ! बाल्यावस्था में एक समय ऐसा आता है कि जब बालक स्वतः चलना सीखता है और चलने लग जाता है। उस समय बहुधा हम ही उस पर प्रेम दर्शाने के कारण, बड़प्पन के कारण, या कई बार दूसरे बच्चों को हम गोद में उठाए देखते हैं, तो उस देखादेखी के कारण, अथवा कई बार घर के बड़े-बुजुर्गों (सास-ससुर) का मन दुखी न हो, इस कारण बालक को गोदी में उठा लेते हैं; पर बालक इसे पसंद नहीं करता। वह अपनी अरुचि व्यक्त करता है, रोकर छूटना चाहता है। लेकिन जब बालक रोज-रोज रोने से गोदी-प्रिय बन जाता है, तो वस्तुतः वह अपंग बन जाता है—इतना अपंग, कि उसका चलने का मन नहीं करता। उसमें भी देखादेखी का रोग आ जाता है। वह दूसरे बच्चों को गोदी में चढ़े देखकर रोने लगता है कि उसे भी गोदी में लिया जाए। इस तरह जब बालक एक बार बिगड़ जाएगा, तो वह रोकर हमें अपने वश में करेगा ही करेगा। हमें भी अलग-अलग स्थितियों में उसके वशीभूत होना पड़ता है। कई बार बालक का रोना हमें नहीं सुहाता, लोक-दृष्टि से वह हमें चुभने लगता है। कई बार हम किसी उलाहने की आशंका से बच्चे को रोते ही तत्काल गोद में उठा लेते हैं। इस प्रकार हम अनेक बार पृथक-पृथक स्थितियों में वशीभूत होकर हैरान हो जाते है। साथ ही बच्चा भी परेशान होता है।

मेरे कहने का आशय यह है कि शुरू से ही हमें उसकी

गलत आदत नहीं डालनी चाहिए। जब बालक स्वाभाविक रूप में चलने लगे, तो उसे गोद में न उठाएं। जब वह थक जाए तब उठाएं, या जल्दबाजी हो, तब की बात अलग है। दूसरी बात यह, कि अन्य बालकों की मांएं जब उन्हें लाड़-लाड़ में उठाएं, और हलरायें-दुलरायें, तब हमें ललचाने की जरूरत नहीं है। अगर हम में उन जैसी ममता न दिखे तो कोई हर्ज नहीं। बालक को स्वत: चलने देने का आपका प्रयत्न अगर बुरा या कम दया वाला दिखे, तो दिखने दें। और हां, सेठों के यहां आयाओं की गोदी में लदे बच्चों को देखकर अगर हमारे बच्चे भी वैसी जिद करें, तो उन्हें गोदी में हर्गिज न उठाएं। जिस तरह से हम उनके लिए मोटर नहीं खरीद सकते, वैसे ही उनकी आया भी नहीं बनना चाहिए।

बच्चे चल नहीं सकेंगे, अत: उन्हें बार-बार उठाकर चलाया जाए, ऐसा हर्गिज न करें। उनमें चलने की शक्ति बहुत होती है। छोटे बच्चों को बहुधा हम प्रवास पर लेकर जाते हैं। तब हमें उनकी इस शक्ति को देखकर बहुत ताज्जुब हुआ है। जब उनके साथ उनके लाड़-प्यार करने वाले माता-पिता या नौकर नहीं होते, तो फटाफट स्वच्छंद भाव से वे अपना काम खुद करने लगते हैं, और अपनी वास्तविक शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। लेकिन जब कभी उनके माता-पिता साथ में होते हैं, तो सचमुच प्राणवान होते हुए भी वे दुर्बलता दिखाने लगते हैं और थकने लग जाते हैं। उनमें से भी जो माता-पिता जरूरत से ज्यादा चिंता या पक्षपात करते हैं, उनके बच्चे तो सचमुच ही अशक्तप्राय बन जाते हैं।

आपके बच्चे को अगर उस बुरी आदत से बचाना हो, तो याद रखें कि जब-जब भी आप बाहर निकलें, और बच्चा आपसे गोद में लेने की मांग करे, तो उसे हर्गिज न उठाएं, जब

तक कि वह अशक्त, बीमार या थका हुआ न हो। रोता है तो उसे एक बार जी भर कर रो लेने दीजिए। गलत आदत तो बदलने से ही छूटेगी। लेकिन यह प्रयोग आजमाने से पहले आपको तय कर लेना पड़ेगा कि उस समय क्या आप दृढ़ता से बालक को आखिर तक रोने देने की स्थिति में हैं। पर अगर इसके लिए आपके पास समय न हो (स्टेशन जाना हो, या लोग-बाग के बीच यह प्रसंग कहीं उकताने-शरमाने वाला न हो), तो वैसी स्थिति में ऐसा प्रयोग नहीं करना चाहिए। कुटेवी बालक को जब ऐसे प्रयोग रास आ जाते हैं, तो वे और अधिक दृढ़ बन जाते हैं और अपनी आदत को छोड़ने का विरोध करते हैं। और फिर ऐसे प्रयोग के वक्त मन को मजबूत रखना पड़ता है। बच्चा रो-रोकर थक जाए, हाथ-पैर पछाड़े, तब भी एक बार तो दृढ़ ही रहना पड़ेगा। अगर कोई कमजोर दिल का हो तो यह प्रयोग किसी और से कराना चाहिए। माता-पिता अक्सर बच्चे का रोना सह नहीं सकते। वे कोमल होते हैं और कोमलता उन्हें बालकों के समकक्ष वशीभूत बना देती है, जैसी कहावत है कि 'दया डाइन को खाती है।'

अगर कोई माता-पिता यह प्रयोग करना चाहे तो उन्हें बहुत शांति और धीरज रखना होगा। बालक झट से रास्ते पर नहीं आता, वह बहुत ऊधम-उठापटक करेगा। उसे अब तक का यही अनुभव है कि आखिर में माता-पिता ही झुकेंगे। यह प्रयोग शुरू होने के बाद बालक को समझाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। एक बार जब बच्चा रोना शुरू कर देता है, तो ज्यों-ज्यों समझायेंगे, त्यों-त्यों दुगुना रोएगा। समझाने और तर्क देने के प्रत्येक समय से उसका रोना नए सिरे से शुरू होता है, आखिर में अंत का समय वहीं से आता है। अत: बालक को सकारण रोने के बाद भी अगर वह रोये तो रोने दें। साथ ही

साथ यह भी ध्यान रखें कि कोई व्यक्ति बीच में पड़कर तुम्हारी योजना को चोपट न कर दे। क्योंकि आप-हम क्रूर नहीं हैं, बीमार बच्चे के लिए दवा-रूपी प्रयोग है यह। इसे हम दवा मानकर ही आजमा रहे हैं। इतनी तमाम बातें हमारे ध्यान में रहेंगी तो न हम बाहर की शर्म से रुकेंगे, न मिथ्या भावुकता से या दूसरों के मान से। कुटेव को मिटाने के लिए इतनी सख्ती करनी ही पड़ती है। उस वक्त आपका-हमारा अन्तर्मन भी रोता है, पर यह उस कुटेव का एक प्रायश्चित्त मात्र है। यह सब जड़ विधि से नहीं करना चाहिए, साथ ही साथ अपनी विवेक-बुद्धि को प्रयुक्त करना चाहिए। प्रतिक्षण याद रहे, न हमारे पास से बाल-प्रेम का क्षरण हो, न मानवीय-दया का।

प्रश्न : ४३

बालक सबों को तूं-तूं कह कर ओछे संबोधन से पुकारता है। हम लोग तो उसे मानपूर्वक पुकारते हैं, पर सगे-संबंधी ऐसा नहीं करते। अतः बच्चा दूसरों को पुकारते समय तुंकारा छोड़ता नहीं। इसका क्या करें?

उत्तर

बहुत प्यार में बिगाड़ा हुआ बालक तुंकारे का प्रयोग करता है। शुरू-शुरू में तो बालक का ऐसा संबोधन माता-पिता को अच्छा लगता है, पर बाद में यही बात बुरी लगने लगती है, और इससे उबर पाना उन्हें भारी पड़ता है। अतः शुरूआत से ही माता-पिता को ऐसा लाड-प्यार छोड़ देना चाहिए। बहुधा पड़ौसी, सगे-संबंधी या मेहमान लोग बालक से इसी ओछे संबोधन को लेकर मजे लेते हैं। इससे सावधान रहने की जरूरत है। सामान्यतः जहां घर में संस्कारी वातावरण होता है, वहीं यह प्रश्न थोड़ा-बहुत खड़ा होता है। पर, अगर अड़ोस-

पड़ोस के असंस्कारी लोगों से यह छूत लगा हो, तो वैसे बालकों की संगति से अपने बच्चों को छुड़ा लेना चाहिए। ऐसे में साफ-साफ कह दो कि 'तुम अपने घर और हम अपने घर।' अपने बच्चे को भी हमें विवेकपूर्वक समझा देना चाहिए : 'ऐसे नहीं कहना चाहिए। हमारे घर में ऐसी बोली अच्छी नहीं लगती। बड़ी बोली ही उत्तम बात है आदि। तुंकारा आदि दिखावटी रोग हैं, वातावरण को बदल देना ही इसका एक मात्र इलाज है। बालक को विशेष मानपूर्वक ही पुकारना चाहिए, या अन्य लोग भी वैसा ही करें, यह कोई इलाज नहीं है। इसी तरह से घर के छोटे-बड़े सभी अत्यंत विवेकपूर्वक बोलने के लिए स्वाभाविक तुंकारा छोड़ दें, ऐसा भी कहने की जरूरत नहीं है। जब हम स्वयं यह जान जाते हैं कि किसको तूं कहकर बुलाया जाए और किसे नहीं, तो वैसे ही स्वाभाविक वातावरण में रहने वाला बालक भी यह सब जान जाएगा।

प्रश्न : ४७

'मुझे मेरे पिता पीटते हैं। मैं पढ़ना न चाहूं तो जबरदस्ती पढ़ाते हैं। मैं जो बांच नहीं सकता, वह मार-पीट करके बंचाते हैं। इसका कोई समाधान लिखें!'

उत्तर

मेरे बाल-मंदिर के एक बालक ने मेरे नाम पत्र लिखकर मुझे हाथों-हाथ थमाया है। इस पत्र का जवाब मैं सिर्फ उसके आदरणीय पिता के नाम ही लिखूं, इसके बजाय सवा सौ पिताओं को लिखूं, तो बेहतर रहेगा। इसीलिए इसका जवाब 'शिक्षण पत्रिका' में प्रकाशित करना तय किया है।

जिस तरह से कोई एक व्यक्ति नदी पर बांध बांधे और दूसरा उसे तोड़ डाले, उसी तरह से मैं मार-पीट किये बगैर

पढ़ाता हूं और घर पर बालक को मार-पीट से पढ़ाया जाए, ऐसा किस्सा है यह ।

बालक बाल-मंदिर में अपनी स्वयं-स्फूर्ति से खूब पढ़ता है, मुझे उसको जबरदस्ती करके पढ़ाना नहीं पड़ता । जबकि घर में पिता बालक को स्वयं स्फूर्ति का अनुसरण करने नहीं देते, अपितु हुकम देकर काम कराते हैं । बालक के इस पत्र से उसका दर्द जाहिर है, पराधीनता भी उतनी ही गहराई से स्पष्ट है । बालक समझता है कि इनका इलाज मेरे हाथ में है । इस पत्र से उसका मेरे प्रति विश्वास व आदर स्पष्ट है, और पिता के प्रति अविश्वास और अनादर । माता-पिता जबरदस्ती पढ़ा सकते हैं, पर वे बालक को ऐसी चिट्ठियां लिखने से नहीं रोक सकेंगे । जबरदस्ती के परिणामस्वरूप ऐसे पत्र लिखने से तो बेहतर यही होगा कि बालक दो दिन बाद धीमे-धीमे पढ़ना सीखे । क्यों बालक को दूसरों के सामने घर की शिकायतें करनी पड़ें ? जबरदस्ती पढ़ाने के मोह में माता-पिता बालक को पढ़ाई करा कर वस्तुतः उनका प्रेम खोते हैं, उन्हें पराया बनाते हैं, यह एक भयंकर स्थिति है कि जो हमें सचेत करती है ।

प्रश्न : ४८

बाल-शिक्षण में माता-पिता रुचि लेने लग जाएं, और बालकों के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझने लग जाएं, ऐसी शिक्षा देने के लिए आपकी शाला की क्या योजना है ?

उत्तर

अगर माता-पिता स्वयं शिक्षित होना चाहते हैं, तो वे बहुत योगदान दे सकते हैं, यथा—

१. वे बाल-शिक्षा तथा बाल-साहित्य घर बैठकर पढ़ें । अपने समय में से रोजाना थोड़ा वक्त इस प्रकार के साहित्य को पढ़ाने में लगाएं ।

२. वे रोजाना थोड़ी देर के लिए बालकों के साथ बातें करें, उन्हें कहानियां सुनाएं, उनके साथ खेलें । बालकों के साथ रहने से बाल-मन और मनोविज्ञान का अच्छा अभ्यास हो जाता है ।

३. किसी न किसी बालमंदिर में चलने वाले शिक्षण-कार्यों को देखने के लिए सप्ताह में एकाध चक्कर लगायें, और देखें कि बाल-शिक्षक बालकों के साथ किस तरह से काम करते हैं । इससे बहुत सारी बातें जानने को मिलती हैं ।

४. किसी बाल-शिक्षण-प्रशिक्षण विद्यालय में एकाध महीने रहें तथा बाल-शिक्षण विधियों का अध्ययन करें ।

प्रश्न : ४६

मेरी एक छोटी बेटी है, लगभग दो साल की । उसकी पढ़ाई का क्या प्रबंध करें ? क्या-क्या कदम उठाएं ? उसने अभी-अभी बोलना सीखा है ।

उत्तर

आप अपनी पुत्री की पढ़ाई में अभी से रुचि ले रहे हैं, इसके लिए आपका अभिनंदन ! सामान्यतया ढाई-तीन वर्ष की उम्र से मोंटेसरी विद्यालयों का लाभ लिया जा सकता है । हमारे देश में सामान्यतया तीन वर्ष से बड़ी उम्र के बालक मोंटेसरी विद्यालय में जाते हैं । लेकिन इन प्रारंभिक तीन वर्षों का समय बहुत कीमती है, और आपने इस उम्र की अपनी पुत्री के पोषण की बात बहुत सही सोची है । आपने अगर स्वयं अपनी तथा पत्नी की पढ़ाई, स्थिति, नौकर-चाकर आदि के संबंध में मुझे बताया होता तो अधिक विस्तार व स्पष्टता से

मैंने आपको उत्तर लिखा होता। ऐसे में आपकी सामान्य जानकारी के लिए कुछ बातें नीचे लिख रहा हूं।

आप विशेष रूप से निम्नलिखित पुस्तकें तत्काल पढ़ जाएं। वैसे तो आपसे पहले आपकी पत्नी को इन्हें पढ़ लेना जरूरी था।

१. घर में बालक क्या करे ?
२. घर में मोंटेसरी
३. मां-बापों से
४. कहनी कहने वाले से
५. शास्त्रीय दृष्टि

उक्त पुस्तकों से सामान्यत: बालक के प्रति आपकी दृष्टि सुनिश्चित होगी तथा घर में आप उसे कुछ-न-कुछ काम सुझा सकेंगे। अगर आपको फुर्सत हो, तथा अंग्रेजी पढ़ने का शौक हो, तो निम्न पुस्तकें फौरन पढ़ जाएं :

1. Advanced Montessori Method. Part I
२. बाल-शिक्षण : जैसा मैंने जाना

उक्त पुस्तकों में नं. २ का गुजराती मूल (बाल शिक्षण मने समझायुं तेम) तो श्री दक्षिणामूर्ति प्रकाशन मंदिर भावनगर में ही मिल जाएगा, तथा अंग्रेजी की पुस्तक तारापोरवाला एंड संस, कालबा देवी, बंबई से मिलेगा। श्री दक्षिणामूर्ति से और भी बहुत सारी पुस्तकें प्रकाशित हैं, पत्र लिखकर सूची पत्र मंगा लें।

बालक को नौकर के भरोसे कम से कम छोड़िए। माता और पिता दोनों को बालक के लिए अपना थोड़ा-थोड़ा वक्त देना चाहिए। नौकरों की संस्था बालकों के लिए बहुत भयंकर है। बालकों के लिए तो उसे एक प्राणघातक वातावरण समझना चाहिए।

बालक को नुकसान न हो और किसी के अधिकारों को आघात न पहुंचे इस तरह से जो-जो प्रवृत्तियां करना अच्छा लगे, बच्चे के लिए उनकी व्यवस्था कर दें। खिलौनों में बालक को बहुत आनंद नहीं आता, पर जिनके द्वारा बालक को कुछ प्रवृत्ति करने की रुचि पैदा हो, ऐसी चीजें उपलब्ध कराने से वह लंबे अर्से तक उनमें लीन रहता है, और अपना विकास करता है। बालक को इस नन्हीं वय में ललचा-फुसला कर या डरा-धमका कर नियंत्रण में रखने की कोशिश हर्गिज न करें। लालच भी उतना ही बुरा है जितना दंड। अतएव इसे हर हालत में त्याग देना चाहिए। अगर आप अपने व्यवसाय में व्यस्त हों, तो बच्ची की मां को ये तमाम बातें विशेष रूप से बता दें, ताकि वह ध्यान रखे।

मां बनने के बाद तो स्त्री को अपना सम्पूर्ण कर्त्तव्य बालक के विकास में लगाना होता है। इसी में स्वयं की तथा जनता की महान सेवा है, इसी में जीवन दर्शन के महान पाठ पढ़ने को मिलते हैं, और बालक से प्रति-पल जीवन धर्म का पाठ बराबर सुनने को मिलता है।

मां बनने से पहले स्त्री को बालकों के लालन-पालन और संस्कार-शिक्षा का पाठ नहीं पढ़ाया जाता, अतएव घर में बच्चे के जन्म लेने के वक्त वह एकाएक खिन्न हो जाती है, उसका मिजाज बदल जाता है फलतः बच्चे को नुकसान पहुंचता है। इसके लिए माता को अपना स्वभाव काबू में रखने की जरूरत है। पति-पत्नी को झगड़ा करने की बजाय इस बात का पता लगाने की जरूरत है कि बालक का पालन-पोषण कैसे किया जाए। बालक मां-बाप के पुण्य-प्रेम का सार होता है, अतः माता-पिताओं को मां-बाप बनने के बाद का जीवन बालक के इर्द-गिर्द व्यतीत करना चाहिए।

प्रश्न : ५०

मेरे दो भतीजे हैं। बड़ा बारह वर्ष का, छोटा नौ वर्ष का। बड़ा भाई पढ़ने का शौकीन है। उसके हाथ में कुछ भी पढ़ने को आएगा, तो पढ़ेगा जरूर। इसके विपरीत छोटा भाई पढ़ने में उदासीन वृत्ति का है। हालांकि उसे पढ़ना आता है, पर शाला की पाठ्य पुस्तकें ही वह इसलिए पढ़ता है कि वे उसे पढ़नी पड़ती हैं, उनके अलावा पूरक रूप में वह कुछ नहीं पढ़ता। उसे कहानी पढ़ने में भी रुचि नहीं है! हां कहानी सुनने में रुचि जरूर है, अतः कहानी पढ़ने में उसकी रुचि बढ़ाने के लिए मैंने उसे कहानी सुनाना शुरू किया है। बड़े मजे ले-ले कर कहानी सुनता है वह। और सुनने की मांग भी करता है। लेकिन स्व-प्रेरणा से घर में रखी कहानी की पुस्तकें कभी नहीं पढ़ता। मैं ही पुस्तक उठाकर उसे कहानी पढ़कर सुनाती हूं। मैंने सोचा था कि ऐसा करने से उसके भीतर पढ़ने की रुचि जाग्रत होगी और स्वतः पढ़ने लगेगा। कहानी सुनना तो उसे अच्छा लगता है। कई बार वह उसी किताब की उसी कहानी को पढ़ता है, जो मैंने उसे सुनाई थी, लेकिन अन्य कहानियां पढ़ने की इच्छा नहीं होती।

चाहे कैसी ही रोचक कहानी हो, या लघु नाटक हो, पढ़ना शुरू करते ही वह यह देखने लगता है कि कितने पन्ने शेष हैं और कितने पढ़े हैं। पढ़ते-पढ़ते थक जाना तो उसकी खास खूबी है।

आप द्वारा भेंट में दिया हुआ 'आपणा पापे' नामक अंक तो इसने स्वतः पढ़ा है। उसमें बहुत-सी छोटी-छोटी कहानियां है, इसलिए उसे दो बार पढ़ गया। इसके पश्चात् मैंने उसे 'शिक्षण पत्रिका' के छठे वर्ष का उपहार अंक दिखाया। पर

उसने पढ़ने के लिए हाथ में लेकर पन्ने उलटने-पलटने के बाद वापिस रखते हुए कहा : 'इसमें तो बहुत लंबी-लंबी कहानियां दिखती हैं।' जबकि लंबी कहानियां उसमें नहीं थी, फिर भी वे उसे लंबी लगीं।

इसका कोई उपाय बताइए! क्या कारण है इसका? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आया। न पत्रिका में ही मैंने ऐसा कोई लेख पढ़ा। मेरी समस्या का कोई समाधान नहीं मिला। कृपा करके कोई रास्ता दिखाएं, आभार मानूंगी!

उत्तर

दोनों भतीजों में आपको समानता ढूंढने की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि शरीर और शक्ति से दोनों भिन्न हैं। बड़ा लड़का होशियार है, वाचन-रसिक है, इसी कारण छोटे वाला वाचन-मंद लगता है। अगर तुलना करने की बात नहीं होती, तो छोटे भतीजे को लेकर इतनी गंभीर स्थिति नहीं होती, जितनी आपको लग रही है। आइंदा दोनों लड़कों के बारे में तुलनात्मक विचार न करके स्वतंत्र विचार करें।

आपके इस पत्र से ज्ञात होता है कि बड़ा भतीजा साहित्य-रसिक है, और फिर वह दृश्येन्द्रिय द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, इस कारण स्वभावतः वाचन-प्रिय लगता है। पर छोटा भतीजा वैसा नहीं, अतः बेशक उसकी साहित्य-रसिक-वृत्ति कम है, साथ ही वह आंखों से ज्ञान प्राप्त करना नहीं चाहता। लेकिन इन कारणों से उसमें कोई विशेष दोष है, यह मैं नहीं मानता। दुनिया का सम्पूर्ण ज्ञान वाचन में नहीं आ जाता; और वह वाचन के माध्यम से ही प्राप्त होता है या होना चाहिए, यह भी नहीं है। वाचन एक साधन है। किसी के लिए वह अनुकूल ठहरता है, तो किसी को अनुकूल नहीं भी

ठहरता । अत: आप वह पढ़ें तभी अच्छा रहे, ऐसी चिंता छोड़ देनी चाहिए। आपके वहां अगर अच्छा वाचनालय हो तो बढ़िया है । उत्तम भोजन में से अगर कोई व्यक्ति अमुक व्यंजन नहीं लेता, तो कोई चिंता की बात नहीं ।

छोटे भतीजे को और किन-किन बातों में मजा आता है, इसका पता लगाइए। उन क्षेत्रों में उसे जितना कुछ करने की इच्छा है, वैसी सुविधाएं दें। एक बालक के विकास का साधन पुस्तकालय होता है, दूसरे का संगीतशाला, तो तीसरे का कारखाना होता है । छोटे भतीजे को 'क्या अच्छा लगता है',—यह नहीं कि 'क्या अच्छा लगना चाहिए', इस दिशा में अवलोकन करें, और वांछित चीजें उपलब्ध करायें ।

अगर उसे लंबी कहानियां पढ़ने से उकताहट होती हो तो यह समझते हुए कि उन कहानियों को पढ़ने की बुद्धि एवं आयु अभी छोटी है, उसकी उम्र से नीचे की कक्षा वाले लड़कों वाली किताबें पढ़ाकर देख लें । अगर वह तीसरी कक्षा में हो, तो उसे बाल-पोथी, पहली, दूसरी या समकक्ष अन्य क्रमिक पुस्तकें दिला दें । भले ही वह धीमे-धीमे पढ़े, पर उसके वाचन को बंद हर्गिज न करें ।

दो भाइयों में से एक भाई अधिक होशियार होने से या हमारे द्वारा बार-बार उसे होशियार कहने से, बहुधा दूसरा भाई हमारे शब्दों के कारण ठंडा पड़ जाता है, वह अपना आत्मविश्वास खो बैठता है, और कई बार तो विकास के रास्ते से अलग हटकर उपद्रव भी मचाता है । इसी को मनोविज्ञान में 'इन्फीरियोरिटी कॉम्प्लेक्स' याने 'हीनता ग्रंथि' कहते हैं। याने 'मुझ में कुछ भी नहीं है', ऐसी भावना। दो जनों की तुलना से, एक की प्रशंसा और दूसरे की निंदा करने से ऐसी स्थिति पैदा होती है । अतः आइंदा दोनों में तुलना जैसी कोई

बात न करें । दोनों को अपने-अपने रास्ते पर जाने देना चाहिए। छोटे भतीजे को कोई विशेष भड़काने का काम न करें ।

प्रश्न : ५१

मेरी बेटी बाल मंदिर जाने से आनाकानी करती है । इसका क्या कारण है, और क्या उपाय है ?

उत्तर

आपकी पुत्री की इच्छा के विरुद्ध उसे बाल-मंदिर में भेजने की कोई जरूरत नहीं । अनेक बालकों के बाल-मंदिर के व्यक्तिगत अनुभव अच्छे नहीं । वे अपना मंतव्य या परेशानी कह नहीं पाते, इसलिए वहां जाने को मना करते हैं, हठ करते हैं, झगड़ा करते हैं और बहुधा बीमार पड़ जाते हैं ।

किसी भी माता-पिता को यह आग्रह नहीं रखना चाहिए, कि प्रत्येक बालक को बाल-मंदिर में जाना ही चाहिए। बाल-मंदिर का वातावरण प्रत्येक बच्चे को पसंद ही आएगा, ऐसा नहीं हैं। कई बार बाल-मन्दिर का वातावरण बालक को चुभने लगता है । ऐसे तत्त्व होते हैं वहां । जिन्हें हम नंगी आंखों से या बुद्धि से देख नहीं सकते, उन्हें बालक दिल में समझ जाते हैं कि बाल-मंदिर उनके लिए सहायक है अथवा बाधक ! यह बात वही जान सकते हैं ।

बालक स्वतंत्रता चाहता है, स्वयं-स्फूर्ति चाहता है और बाल-मंदिर ये सब उपलब्ध कराने का दावा करते हैं । अर्थात् अगर ये दोनों चीजें बालक को वहां नहीं मिलेंगी, तो वे भाग छूटेंगे। बहुधा बाल-मंदिर के शिक्षकों में बालकों के साथ व्यवहार करने का ज्ञान नहीं होता । या तो वे उन्हें अत्यधिक हिलाते-फुलाते हैं, या फिर अत्यधिक उपेक्षित छोड़ देते हैं ।

कई बार शिक्षक की वाणी से फूटती अशिष्टता, जल्दबाजी, कर्कशता से वे भयभीत हो जाते हैं। कई बार शिक्षक सतही तौर पर ही सिद्धांतों को व्यवहार में लाता है, जबकि भीतर से उन्हें समझ तक नहीं पाता; ऊपर से स्वतंत्रता देने का दिखावा करता है, जबकि तत्काल अनुशासन जताने हेतु बांके-टेढ़े तरीके इस्तेमाल करता है। कई बार वह लोगों को बताने लग जाता है कि उसका बाल-मंदिर कैसा बढ़िया चल रहा है और बच्चे कैसे अनुशासित हैं। ये सभी बातें बालकों को अरुचिकर लगने लगती है और वे वहां से भाग जाते हैं। और एक बात यह भी है कि अक्सर शिक्षक और अभिभावक बाल-मंदिर की जैसी प्रशंसा करते हैं, वैसा बालकों को वहां कुछ न मिलने से वे बाल-मंदिर के प्रति श्रद्धा खो बैठते हैं।

बहुधा बाल-मंदिर के शिक्षक अपना विवेक भूल कर व्यवस्था कायम करने के लिए, और जब वे कोई अन्य मार्ग नहीं निकाल पाते, तो बालकों पर चिढ़ते हैं, उन्हें दुतकारते हैं, उन पर रौब जमाते हैं, तो ऐसे में बालक बालमंदिर के शिक्षकों को और ज्यादा धिक्कारते हैं।

बात यह भी है कि वहां आने वाले बालकों में से अगर कोई बालक परेशान करता है, तो बालक को वहां जाना अच्छा नहीं लगता। इसके अलावा घर पर अत्यधिक आकर्षण हो, नौकरों का अवलंबन हो, मां जब उसे भेजना चाहती है तो पिता की मर्जी नहीं होती या इसके विपरीत होता हो, घर के बड़े-बूढ़े उसे अत्यधिक लाड-प्यार करते हों, जो मांगे वह देते हों, खिलाते हों, तो बालक बाल-मंदिर में नहीं जाएगा। ऐसी परिस्थिति में बालक को जबरन न भेजना ही एक उत्तम उपाय है। बालक को न भेजने के पश्चात् उसकी वजह जाननी चाहिए, और संबंधित व्यक्तियों से मिलकर उसका समाधान करना चाहिए।

प्रश्न : ५२

मेरी पुत्री का स्वभाव ही ऐसा है कि वह फौरन हिल-मिल जाती है। किसी एक बीमारी की वजह से उसका एक पैर कटाना पड़ा, और वह लंगड़ी हो गई। अब वह दूसरों को दौड़ते-खेलते देखकर दुखी हो जाती है। दूसरे बच्चे भी उसे चिढ़ाते हैं। मैं उसके भविष्य को लेकर चिंतित हूं। उसकी मनोवृत्ति को मुझे किस दिशा में मोड़ना चाहिए कि वह इस वक्त भी सुखी रहे और भविष्य में भी। कोई उपाय बताइए ?

उत्तर

आपने पुत्री के बारे प्रश्न किया है, इसके जवाब में कुछेक बातें लिख रहा हूं, परिस्थिति के अनुसार इसका उपयोग कर लीजिए।

इस तरह से अपंग बन जाने वाले बालक पराधीन हो जाने से भावुक बन जाते हैं, यह बात सच है। उसे बुरा न लगे, इसलिए घर वालों को चाहिए कि उसका ध्यान इस ओर न खींचें; उसके सामने उसकी अपंगता की चर्चा न करें अथवा उसे लेकर उसके सामने अपनी चिंता व्यक्त न करें। ऐसा करने से कोई लाभ तो मिलने से रहा, उल्टे बालक में हीनता पैदा होती है।

मैं नहीं जानता कि बालिका कितने वर्ष की है; पर पांच वर्ष की हो जाए तो आप उसे पढ़ना सिखा दें। ऐसे में चित्र और पुस्तकें पढ़ना उसे आनंददायी लगेगा। इनमें व्यस्त रहते हुए तो वह अपनी स्थिति को भूल ही जाएगी, और आगे चल कर तो वह इतनी स्वाभाविक बन जाएगी, कि उसे याद भी नहीं आएगा।

अगर संभव हो तो उसके लिए ग्रामोफोन मंगा दें और उसे बजाना सिखा दें। यह प्रवृत्ति भी उसे रुचिकर लगेगी। दूसरे बालकों को देखकर वह इसलिए दुखी होती है कि स्वयं दौड़ नहीं सकती, पर वह स्वयं भी कुछ कर सकती है, दूसरों को करके दिखा सकती है, ऐसा उसे महसूस होगा, तो वह संतुष्ट रहेगी। उसे गाना आता हो या चित्र बनाना आता हो, तो वह दूसरों के सामने खुशी-खुशी खेल सकेगी।

इसके अलावा आसपास के उसकी वय के बालकों को इकट्ठा करके कभी कोई सभा या जलसा आयोजित करें। वह सभा आपकी लड़की की तरफ से, उसी के नाम से हो। जब दूसरे बालक उसमें भाग लेंगे, तो एक साथी की हैसियत से उसे देखेंगे। एकत्रित बालक अगर वहां उसके साथ बैठकर तरह-तरह के खेल खेल सकें, ऐसा प्रबंध भी होना चाहिए—जैसे ताश, चोपड़, शतरंज, नौ कांकरी आदि। घर में भी ऐसे मनो-विनोद के कार्यक्रम करने चाहिए, जिसमें पुत्री को महत्त्वपूर्ण स्थान मिले। इसके बाद उसे हाथ से कोई कारीगरी का सुन्दर व उपयोगी काम सिखा दीजिए। अनेक कार्य तलाश किये जा सकते हैं, यथा, अन्य बालक नाटक करें, तो पुत्री पर्दा खींचे। याने ऐसे महत्त्व के कामों का आप प्रबंध करें। बालिका की उम्र को जाने बिना मैंने जो यह सलाह दी वह आपको जैसी भी उपयोगी लगे, आजमा कर देखिए।

❑